सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 43, अंक : 2
मई – 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
खंदौली 283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन(आयु) – सब चलायमान और नश्वर है, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

◆ ◆ ◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च।।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूप वाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूप वाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 2

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

हे प्रभो! आप बैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले है। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परम श्रेष्ठ हैं। गो-पालक की लीला में आपकी विशेष रुचि रहती है- ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकाधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

मई, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	8
3.	सिद्ध कबीर के चमत्कारिक चरित्र –श्री एस आर. सागर	14
4.	योग दिव्य अविनाशी जीवन है। –आचार्य अमित कुमार मिश्र	16
5.	कर्म–फल–त्याग –स्व. श्री सेन गुरु	17
6.	श्री गीतामृत–पदावली –डा. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	22
7.	चित्तवृत्तियाँ योग में बाधक –डा. जे पी. शर्मा	25
8.	आओ–आओ गुरुजी..... –जगदीश राए बंसल	30
9.	मेरे गुरुदेव, योग की सर्वोत्तम सत्ता –केशव देव उपाध्याय	31
10.	श्री प्रभु चरणो में समर्पित –राजेश कुमार सिंह	34
11.	योग सर्वांगीण जीवन पद्धति के रूप में –आचार्य चन्द्र हास शर्मा	35
12.	गणितीय सूत्र का संक्षिप्त प्रयोगात्मक स्वरूप –प्रो. ऋषिराम शर्मा	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योग और सिद्धियाँ

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग दर्शन के कैवल्य–पाद मे पाँच प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया गया है।

जैसे:–जन्मौषधि मन्त्र तप: समाधिजा : सिद्धय :।

(1) जन्मजा सिद्धि :–

प्राणी को जन्म के साथ ही सहजरूप से प्राप्त होने वाली सिद्धि को जन्मजा–सिद्धि कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इसे सहजा सिद्धि कहा गया है। जिस प्रकार पक्षियों को खेचरत्व जन्मजात सिद्ध होता है, उन्हें उसके लिये किसी प्रकार का पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मनुष्य को खेचरत्व प्राप्त करने के लिये संयम करना पड़ेगा और उसके फलस्वरूप ही उसे आकाश गगन की सिद्धि प्राप्त होगी। जैसा कि योगदर्शन के विभूतिपाद के 42 वें सूत्र में कहा गया है:–

कायाकाशयो: सम्बन्धसंयमाल्लघुतूल समापत्ते–श्चाकाशगमनम्।

काया और आकाश के सम्बन्ध में यदि योगी संयम करेगा तो उसे समाधि के बल से रूई के सदृश हल्कापन प्राप्त हो जायेगा और वह योगी आकाश में उड़ने लगेगा।

मनुष्य के लिए यह सिद्धि समाधिजा सिद्धि है किन्तु चिड़िया, कबूतर, कौआ, कोयल, चील, गिद्ध आदि पक्षियों के लिए यह आकाश गमन की सिद्धि सहजा सिद्धि है, उनको यह सिद्धि जन्म ग्रहण करने मात्र से ही प्राप्त हो जाया करती है। उनके रास्ते में यह सिद्धि किसी भी प्रकार से अन्तराय नहीं है। वे लोग स्वाभाविक ही आकाश गमन करते हैं। उनके मन में कोई अभिलाषा नहीं होती कि वे आकाश गमन की इस सिद्धि का प्रदर्शन करके लोक में ख्याति करेंगे। केवल मात्र खेचरत्व प्राप्त होना यह उनका स्वाभाविक कर्म ही है। इसी को जन्मजा सिद्धि कहते हैं।

(2) औषधिजा सिद्धि :–

जन्मजा सिद्धि सहजा होती है। इसके अतिरिक्त कुछ सिद्धियाँ इस प्रकार की हुआ करती हैं जो मनुष्य को औषधियों के बल से प्राप्त हुआ करती हैं। औषधियों के प्रत्यक्ष चमत्कार आज इस घोर कलि–कलि के समय में भी सहजरूप से देखने को मिलते हैं। रोगी चिल्ला रहा हो, रो रहा हो, बुरी तरह तड़प रहा हो, डाक्टर आता है, रोगी को एक गोली

खिलाता है, रोने वाला रोगी थोड़ी देर में हँसने लग जाता है और उसके उस कष्ट का कहीं भी पता नहीं चलता कि वह कहाँ गया? यह कष्ट को हरने वाली शक्ति कुछ औषधियों के अन्दर विद्यमान है। इसके अतिरिक्त वनीय दिव्य औषधियाँ विशेष रूप से आत्म विकास करने वाली हुआ करती हैं।

जंगल में रहने वाले तपस्वी साधु प्रायः इन दिव्य औषधियों की तलाश में रहा करते हैं। उदाहरणस्वरूप:–

चान्द्रायण बूटी :–

यह वनौषधि चन्द्रमा की कला के साथ दिन–प्रति–दिन बढ़ती ही रहती है। ज्यों–ज्यों चन्द्रमा की एक–एक कला बढ़ती है त्यों–त्यों इसमें पत्ते निकलते रहते हैं और ज्यों–ज्यों कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ क्षीण होती हैं त्यों–त्यों इसके पत्ते भी क्षीण होते जाते हैं। इस औषधि में बड़ी दिव्य गन्ध है। कोई भाग्यवान पुण्यात्मा जीव यदि कहीं इसको प्राप्त करले तो उसका शरीर दिव्य देह के रूप में परिवर्तित हो जाया करता है। इससे दिव्य गुणों का विकास स्वाभाविक होने लगता है। दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि की ताकतें अनायास ही उसे प्राप्त होने लगती हैं और वह अपने आपको चिन्मय स्वरूप में विलीन देखने लगता है। जो साधु इस दिव्य औषधि का सेवन करता है उसके शरीर में दिव्य गुणों का प्रकाश हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है।

विद्युल्लता :–

विद्युल्लता नाम की एक दिव्य औषधि है। इस बूटी को तलाश करने वाला व्यक्ति जंगल में घूमता–फिरता है। किन्तु उसकी प्राप्ति आसानी से नहीं होती। विद्युल्लता की एक ही पहिचान है कि वह रात में बिजली के सदृश चमका करती है किन्तु प्रभात होने पर वह एक साधारण जंगली औषधि के समान रह जाया करती है। जो व्यक्ति इसको ध्यान व पहिचान के साथ प्राप्त करने की चेष्टा करता है और यदि उसका पुण्य प्रारब्ध है और रात्रि के समय कहीं चमकती हुई दिखलाई दे जाये तो उसके प्रकाश को देखकर उसके पास पहुँच जाय और उखाड़ ले। इस दिव्य औषधि के सेवन करने से बहुत ही सफलता को देने वाली अद्‌भुत मस्तिष्क शक्ति उसके अन्दर पैदा हो जाती है। दक्षिण के रहने वाले मेरे छोटे गुरु भाई योगी श्री नृसिंहमूर्ति जी एक आँखों देखी घटना सुनाया करते थे। एक पंडित बड़े विद्वान थे। उन्होंने अपने पुत्रों को पढ़ा–लिखाकर विद्वान बनाया किन्तु प्रारब्ध–वशात युवावस्था प्राप्त होते ही वे मर गये। इससे पंडित के मन में बड़ा भारी दुःख था कि युवा अवस्था प्राप्त होते ही उनके विद्वान लड़के मर जाते हैं। लौकिक रीति–रिवाजों में पड़कर उन्होंने अपने छोटे बच्चे को मूर्ख रहने दिया। उनकी भावना थी कि विद्वान होकर लड़के मर जाते हैं। सम्भव है यह मूर्ख रहकर जीवित रह जाये। किन्तु होनहार कुछ और ही थी। पंडित के घर में कोई महात्मा आकर ठहरे।

उन महात्मा जी को पंडित के लड़के को देखकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उस मूर्ख लड़के को विद्युल्लता का सेवन कराया और कह दिया कि अब तेरे पिता जिस समय विद्यार्थियों को पढ़ाने लग जाया करें, उस समय तू उनके पास जाकर बैठ जाया करना और पाठ सुनते रहना। महात्मा के कहने पर उसने उसी प्रकार का आचरण किया। परिणाम स्वरूप वह लड़का अन्य विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने वाले पाठ को सुनकर थोड़े ही समय के अन्दर पूर्ण विद्वान हो गया। जिस समय पंडित जी को यह पता चला कि मेरा लड़का विद्वान है तो उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लड़का इतनी जल्दी विद्वान कैसे बन गया? जब उनको कारण का ज्ञान हुआ कि इसने किसी महात्मा से विद्युल्लता का सेवन किया है तो पंडित जी को विद्युल्लता की दिव्य शक्ति पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इस प्रकार की सिद्धियाँ औषधिजा सिद्धियाँ कहलाती हैं।

(3) मन्त्रजा सिद्धियाँ :–

हमारे शास्त्रों में मंत्र शक्ति का बहुत बड़ा उल्लेख मिलता है। मंत्र का शब्दार्थ है मनन से त्राण करने वाला। बहुत से साधु–सन्यासी लोग स्वाध्याय को बढ़ाने के लिए मन्त्रों का अनवरत जप किया करते हैं और मंत्र का जप करने से शनैः शनैः उनके अन्दर सिद्धियों का निवास होता जाता है। योग दर्शन बतलाता है:–

'स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः'

मंत्र का जप करना या गीता–रामायण आदि का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति जिस मंत्र का जितना अधिक से अधिक स्वाध्याय करते हैं उतनी ही उनको मंत्र शक्ति प्राप्त हो जाया करती है और शनैः शनैः अभ्यास के दृढ़ हो जाने पर इष्टदेव का सम्प्रयोग भी होने लगता है। यही सब शक्तियाँ मन्त्रजा शक्तियाँ कहलाती हैं जो हर व्यक्ति को प्रयत्न करने पर उपलब्ध हो सकती हैं।

द्वन्द्वसहनं तप :–

सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि सहन करना तप कहलाता है। योगी के लिये तप आवश्यक कर्तव्यों में से एक है। हमारे शास्त्र कहते हैं:–

'तपसाचीयते ब्रह्म'

अर्थात्–तप के द्वारा ब्रह्म की पहचान की जाती है। मनुष्य ज्यों–ज्यों अपनी तपस्या को बढ़ाता है त्यों–त्यों उसके इन्द्रिय–मल क्षीण होने लगते हैं। योगियों के समाज में प्राणायाम से बढ़कर किसी दूसरी तपश्चर्या का कोई विशेष महत्व नहीं है। प्राणायाम ही सबसे ऊँचा और बड़ा तप माना गया है।

योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव तप के फल का निर्देशन करते हैं:–

''कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः''

अर्थात्–तप के फलस्वरूप योगी को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धियाँ उपलब्ध होती है। कायिक सिद्धि का अर्थ है शरीर का वज्रकाय के रूप मे परिवर्तित होना। इन्द्रिय सिद्धियों का अर्थ दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि योगी को स्वाभाविक होने लगती है। ये सब तप से होने वाली सिद्धियों का परिणाम है। तपस्वी मनुष्य का अन्तःकरण बिल्कुल निर्मल हो जाता है। अतः उसके संकल्प में शक्ति का वास रहा करता है। तप परायण व्यक्ति जो–जो मन में सोचता है उसकी सत्य संकल्पता से सब कुछ बन जाता है। सत्य संकल्पता तप से साध्य है। इन्ही सिद्धियों का नाम तपोजा सिद्धियाँ है।

समाधिजा सिद्धियाँ :–

जो सिद्धियाँ हमें संयम के बल से प्राप्त होती है। उन्हें समाधिजा सिद्धियाँ कहते है। मनुष्य अपने अभ्यास बल से जब ''त्रैयमेकत्र संयमः'' वाली सिद्धि को उपलब्ध करता है तब वह जहाँ–जहाँ भी संयम करता है वहाँ–वहाँ उसको सिद्धियाँ उपलब्ध होने लगती है। योगी अपने संयम को परिपक्वता में परिवर्तित कर ले तो उसके लिए सिद्धियों का द्वार खुल जाता है। वह 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्' की ताकत वाला बन जाता है। संसार में जो भी व्यक्ति दीप्तिमान एवं शक्तिमान दिखलाई देता है वह सभी का पूज्य बन जाता है क्योंकि उसके अन्दर शक्ति है। शक्तिहीन मनुष्य की कोई गणना नहीं है। शक्ति वाला सब जगह मान व पूजा का अधिकारी बनता है। जिन देवताओं की हम आराधना करते है वे सब हमारे पूज्य इसलिए है क्यों कि ये लोग शक्ति के केन्द्र है। उन्होंने अपनी शक्ति को जमा करके अपने अधिकार में रख लिया है। इसलिये मनुष्य को सब प्रकार से अपने आपको सशक्त बनाना चाहिए। उसी से वह परम श्रेय का भागी बन सकता है।

जो मनुष्य सिद्धि भाजन होना चाहता है वह अपने आपको साधना के मार्ग पर न्यौछावर कर दे। शास्त्र का सिद्धान्त है–

देहं वा पातयेम कार्य वा साधयेम।

अर्थात्–साधक अपने मन में कटिबद्ध होकर यह निश्चय करे कि या तो मैं कटिबद्धता के साथ त्यागकर अपने लक्ष्य को पूर्णरूपेण पा जाऊँगा और यदि ऐसा न कर सका तो अपने शरीर का परित्याग कर दूँगा, जो मन में इस प्रकार की धारणा करके दृढ़ निश्चय के साथ लग जाते हैं वे अवश्य ही सिद्धि भाजन हो जाया करते है।

अतिशय रगड़ करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई।।

जो अतिशय रगड़ करता है, वह चन्दन में से अग्नि प्रगट कर लेता है।

'करत–करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।'

इसलिए हर साधक को चाहिए कि वह अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करता हुआ, अपने आपको सशक्त बनावे। संसार वाले यह देख लें कि यह वही अमुक व्यक्ति है जिसने भारी प्रयत्न के बाद अपना इतना बड़ा उत्थान किया है–ऐसी है तप की महिमा:–

'तपसा ब्रह्मचर्येण देवाः मृत्युमुपाघ्नत'।

अर्थात्–तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया है।

▣ ▣ ▣

आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति।।

–भर्तृहरि नीतिशतक

''आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख और अभाव नहीं आते।''

योग-दर्शन में कर्मतत्व मीमांसा

आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

कर्मतत्व एक ऐसा तत्व है, जिस पर सभी दर्शनकारों ने गहराई से विचार किया है। योग-दर्शन में कर्म का स्वरूप, कर्म-बंधन तथा इससे मुक्ति के क्या उपाय हैं? इस पर विस्तृत विवेचन किया गया है। योग-सूत्रों पर भाष्य करते हुए भगवान पतंजलिदेव ने 'कुशलाकुशलानि कर्माणि' कह कर कर्म का लक्षण बताया है अर्थात् जिसमें अच्छे-बुरे (पाप-पुण्य) का सम्बन्ध हो वह कर्म कहलाता है। कर्म चाहे अच्छे हों या बुरे, दोनों ही बन्धन के कारण हैं। मनुष्य अपने जन्म-जन्मान्तर के शुभाशुभ कर्म-संस्कारों के अनुसार प्रतिक्षण कर्म करता रहता है। कर्म करते हुए राग-द्वेषजन्य शुभाशुभ चिंतन ही कर्मफल देता है। यदि मनुष्य राग-द्वेष रहित होकर ज्ञान व इन्द्रियों से कर्म करता है तो वह क्रिया मात्र होती है, उसका कोई फल नहीं मिलता है। यदि सभी कर्म-बन्धनकारी होने से दुःखरूप हैं, यह मानकर कर्म त्याग देना चाहिए जैसा कि मोक्षधर्म में लिखा है-

सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते, सर्वाणि दुःखेषु तथोद्विजन्ति।
तेषां भवोत्पादन जातखेदः, कुर्यात्र कर्माणि द्विजातवेदः।।

अर्थात् सब प्राणी सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होते हैं। इसलिए संसार-चक्र में डालने वाले होने से कर्मों को भुक्त-भोगी न करे। किंतु अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं-

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्य कर्मकृत।

अर्थात् कोई भी प्राणी एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसलिए **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** इस वेद-वाक्य के अनुसार मनुष्य को संसार में कर्म करते रहना चाहिए। महर्षि वशिष्ठजी ने बाह्याभ्यन्तर भेद से कर्म दो प्रकार के बताये हैं। उन दोनों में से एक को करत रहना अत्यावश्यक है-

बाह्यान्तरश्चेति द्विविधं, कर्म वैदिकम्।
तयोरन्यतरत् कुर्यान्नित्यम्, कर्म यथा विधिः।।

बाह्यान्तर भेद से वैदिक कर्म दो प्रकार के हैं, उन दोनों से एक को यथाविधि करते रहना चाहिए। जिस व्यक्ति का साधना-मार्ग में प्रवेश नहीं है, उसे नित्य-नैमित्तिक आदि बाह्य कर्म करना चाहिए। जो योग-मार्ग पर आरूढ़ हो चुके हैं, उनके लिए आभ्यान्तर कर्म ही करने

श्रेयस्कर है। इसी तथ्य को गीता में भगवान ने स्पष्ट रूप से समझाया है–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं, कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः कारणमुच्यते।।

(गीता 6/3)

अर्थात् जो साधक योग–मार्ग पर आरूढ़ हो रहा हो, उसे आसन, मुद्रायें तथा प्राणायामादि कर्म करना चाहिए। जो योगारूढ़ हो चुका हो, उसके लिए आत्म–संयम ही आवश्यक है। जो व्यक्ति साधना रहित है, उसे नित्य–नैमित्तिक आदि बाह्य कर्म अवश्य ही करना चाहिए अन्यथा प्रत्यवाय दोष (पाप) लगता है। योगी तथा संन्यासी के लिए तो आत्म–चिंतन व ध्यानयोग का ही विधान है। विवेक ज्ञान होने पर कर्म–बन्धन योगी को स्वयं छोड़ देते हैं। जैसाकि कहा गया है–

ऋतुं प्राप्य यथा वृक्षः, पत्रं त्यजति निस्पृहः।
तत्त्वं प्राप्य तथा योगी, त्यजेत कर्म परिग्रहम्।।

अर्थात् जिस प्रकार ऋतु आने पर वृक्ष पत्तों को छोड़ देता है, उसी प्रकार से विवेक ज्ञान को प्राप्त करके योगी कर्म–बन्धन से छूट जाता है। ध्यानयोग का आनन्द प्राप्त होने पर योगी के कर्म, योगी को स्वयं छोड़ देते हैं। जैसा कि शास्त्र–प्रमाण है–

न कर्माणि त्यजेयोगी, कर्मभिस्त्यजते असौ।
विदिते परतत्वे तु, समस्त नियमैरलम्।।
तालवृन्तेन किं कार्यम्, लब्ध मलयमारुते।
ज्ञानामृत रसो येन, सकृदास्वादितो भवेत्।।
स सर्वकार्यमुत्सृज्य, तत्रैव परिधावति।।

अर्थात् योगी कर्मों को न त्यागे, कर्म ही योगी से स्वयं छूट जायेंगे। परतत्व के जान लेने पर समस्त नियमों के पालन की आवश्यकता नहीं रह जाती। जब मलयाचल की शीतल वायु चलने लगे तो तालवृन्त से क्या प्रयोजन! जिसने एक बार भी ज्ञानामृत रस का आस्वाद ले लिया हो, वह सारे कर्मों को छोड़कर उधर ही भागता है। आत्मरागी के लिए कर्म त्याग का कोई दोष नहीं लगता–

'आत्मन्येवात्मनः तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते'

इस भगवद्वचन के अनुसार जो आत्मा में ही रमण करने वाला है, उसके लिए कोई कर्म नहीं है। इसलिए जब तक अन्तःकरण की शुद्धि पूर्णरूपेण होकर ज्ञान का उदय न हो जाय तब तक कर्म करते रहना चाहिए–

ज्ञानमुत्पद्यते पुसां, क्षयात्पापस्य कर्मणः।
यथा आदर्शतले प्रख्ये, पश्यन्त्यात्मानमात्मानि।।

अर्थात् पाप–कर्मों का क्षय होने पर मनुष्य को ज्ञान स्वयं हो जाता है। जिस प्रकार से

स्वच्छ दर्पण पर हम अपने आपको देख लेते हैं।

ईशावास्योपनिषद् में भी कर्म तथा ज्ञान दोनों के समुच्च दर्शाया गया है।

निम्न मन्त्र इस तथ्य की पुष्टि करता है–

विद्यां च अविद्यां च, यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युतीर्त्वा, विद्यया अमृतमश्नुते।।

अर्थात् विद्या तथा अविद्या दोनों को जानना चाहिए। कर्म से मृत्यु को पार करके ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। ज्ञान और कर्म दोनों की आवश्यकता तत्व ज्ञान के लिए रहती है, निम्न श्लोक इस बात की पुष्टि करता है–

समाभ्यामेव पक्षाभ्याम्, यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञान कर्मभ्यां, लभते परमं पदम्।।

अर्थात् जिस प्रकार से दोनों पक्षों (पंखों) से पक्षी आकाश में उड़ता है, उसी तरह से ज्ञान व कर्म दोनों से परम पद की प्राप्ति की जाती है। कर्मों का अधिकार क्षेत्र ज्ञान प्राप्ति तक ही है।

सर्व कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते

योग–दर्शन में विवेक–ख्याति पर्यन्त योग के अंगों का विधान बताया गया है।

योग–दर्शन के अनुसार जीव क्लेश कर्म विनाकाशय से ग्रसित है। क्लेश कर्म की निवृत्ति योग–दर्शन का लक्ष्य है। कर्म अविद्या जन्य होते हैं। अविद्या के नाश हो जाने पर कर्म व कर्माशय का क्षय हो जाता है। अविद्या का नाश विवेक ख्याति से ही होता है। इसी विवेक ख्याति का दूसरा नाम प्रसंख्यानाग्नि भी है। इस अवस्था को प्राप्त योगी के सम्पूर्ण कर्म दग्ध बीज भाव को प्राप्त हो जाते हैं, कर्म पुनः फल देने में समर्थ नहीं होते। जिस प्रकार से भूना हुआ बीज उगता नहीं है। **''क्षीयन्ते चास्य कर्माणि''** वाली बात तभी चरितार्थ होती है। इसी अवस्था को प्राप्त योगी निष्काम कर्मयोगी कहलाया जा सकता है, इससे पहले निष्कामता की कल्पना व्यर्थ ही है। विवेकाग्नि से सर्व कर्म दग्ध हो जाते हैं। इसी भाव को भगवान ने

'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहु पण्डितं बुधाः'

तथा

'ज्ञानग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन'

इत्यादि वचनों से पुष्ट किया है। विष्णु–पुराण में भी **'योगाग्नि दग्ध कर्म चयोऽचिरात्'** ऐसा कहा गया है।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं– (1) संचित (2) प्रारब्ध, तथा (3) क्रियमाण।

संचित कर्म वे होते हैं जो जन्म–जन्मान्तरों के किये हुए कर्मविपाक लिए हुए चित्त–भूमि में जमा रहते हैं जिनका फल अभी मिला नहीं है। प्रारब्ध वे कर्म होते हैं जो संचित में से निकाले हुए जीव के पूरे जीवन में अपना फल देने में लगे हुए होते हैं। इस समय किये जा

रहे कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। कर्माशय के अनुसार ही जीव को विभिन्न योनि, जीवन–काल तथा मार्ग प्राप्त होते हैं–

सति मूल तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:।

(योग–दर्शन 2/13)

कर्माशय के मूल में रहते हुए उसी के अनुसार जाति (मनुष्यादि) आयु तथा भोग मिलता है। कर्माशय के अनुसार किस प्रकार से जात्यादि हैं इसका विवेचन इसी सूत्र पर भाष्य करते हुए व्यासदेव जी ने विस्तृत रूप से किया है। पहले कई शंकाओं को उठाकर फिर उसका निराकरण किया है। ये शंकायें सभी मनुष्य के मन में हो सकती हैं। जो इस प्रकार हैं–

(1) क्या एक कर्म एक जन्म का दाता है अथवा एक कर्म अनेक जन्मों को देता है।

(2) क्या अनेक कर्म अनेक जन्म को देते हैं अथवा अनेक कर्म एक जन्म को देते हैं।

उपरोक्त शंकाओं का क्रम से निराकरण करते हुए यह सिद्ध कर रहे हैं कि अनेक कर्म एक जन्म को देते हैं। भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

तस्माज्जन्म प्रायणान्तरे कृत: पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचयो विचित्र: प्रधानोपसर्जनभावेन वस्थित: प्रायवाभिव्यक्त एकप्रघट्टकेन मरणं प्रसाध्य संमूर्छित एकमेव जन्म करोति, तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति। तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोग: संपद्यति इति। असौ कर्माशयो जन्मायुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयते इति।

अर्थात्– जन्म से मृत्युपर्यन्त तक के किये गये विचित्र (सुख–दुःख फलदायी), प्रधान (शीघ्र फलदायी) तथा उपसर्जन (विलम्ब से फलदायी) भाव से स्थित पुण्यापुण्य कर्माशय समूह मृत्यु के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। एक साथ मिलकर मरण साधनपूर्वक समूच्छित (पिण्डीभूत) होकर एक ही जन्म को निष्पन्न करते हैं। यह जन्म उसी कर्माशय से आयु पाता है और उस आयु में उस कर्माशय के अनुसार भोग निष्पन्न होता है। यह कर्माशय जन्म, आयु तथा भोग का हेतु होने से त्रिविपाक कहलाता है।

भाव यह है कि मृत्यु के समय प्रधान कर्म जिनके संस्कार चित्त में प्रबल रूप से उत्पन्न हो चुके हैं, जाग उठे हैं और अपने जैसे पूर्व सब जन्मों के कर्माशय के संचित संस्कारों के अभिव्यंजक होकर उन्हें जगा देते हैं अर्थात् अपने अनुकूल के संस्कारों को साथ लेकर एक नया प्रारब्ध (जन्म) तैयार करते हैं। प्रधान कर्म यदि पुण्य का है तो संचित कर्माशय के पुण्य संस्कारों को लेकर मनुष्य देवादि जाति, दीर्घायु तथा सुख–भोग वाला जन्म मिलेगा। यदि प्रधान कर्म पाप का है तो अगला जन्म भी नीच योनि वाला ही होगा। मृत्यु के समय ही जीव अगले जन्म की किस योनि को प्राप्त होगा, इसका ज्ञान हो जाता है। दुःखपूर्वक शरीर त्याग या अधोमार्ग से, प्राण-त्याग से अशुभ गति, सुखपूर्वक तथा यौगिक विधि से प्राण त्याग से शुभ गति का ज्ञान हो जाता है। **'यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्'** इस वचन का

भी यही अभिप्राय है।

योग–साधन के द्वारा प्रारब्ध को भी बदला जाता है। यद्यपि **'प्रारब्ध कर्मणात् भोगादेव क्षय:'** यह सिद्धान्त है, परंतु योगियों के लिए यह पूर्णरूपेण लागू नही होती है। योग–दर्शन का सूत्र है–

क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीय:। (योग–दर्शन 2/12)

अर्थात् क्लेशमूलक कर्माशय का भुगतान इस जन्म में तथा जन्मान्तरों में होता है। दृष्ट जन्म वेदनीय कर्म वे हैं, जो इसी जन्म में किये जाते हैं तथा जिनका फल भी इसी जन्म में मिल जाता है। इनमें पुण्य कर्माशय को सम्पादन कर इसी जन्म मे फल प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं। तीव्र संवेग से मन्त्र तपस्या, समाधि का अभ्यास ईश्वर, देवता तथा सिद्ध गुरुओं की कृपा से जो पुण्य कर्माशय बनता है, वह इसी जन्म में तत्काल फल देने वाला होता है, जो अशुभ प्रारब्ध को भी शुभ में बदल देता है। जैसे नन्दीश्वर के पुण्य के प्रभाव से मनुष्यत्व से देवत्व की प्राप्ति हो गई। मार्कण्डेय ऋषि को पुण्य प्रभाव व भगवान शिव की कृपा से अमरत्व की प्राप्ति हो गई। यद्यपि मार्कण्डेय की आयु प्रारब्धानुसार सोलह वर्ष की ही थी। इस प्रकार से घोर पाप कर्मो का फल भी इस जन्म मे मिलता है। वे कर्म ये हैं– बहुत दु:खी, डरा हुआ, रोगी, दीन, विश्वास मे आये प्राणी, महापुरुषों व तपस्वियों के साथ बार–बार किया गया अपकार या घात तुरन्त दे देता है जो घोर पाप कर्माशय को तैयार कर देता है। जैसे पाप–कर्म के कारण नहुष अजगर बन गया। कर्म तथा कर्माशय का नाश चार अवस्थाओं में होता है। योग–दर्शन का सूत्र है–

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु–विच्छिन्नोदाराणाम्।

अर्थात् प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार कर्मों की जननी अविद्या है। ये चार प्रकार के कर्म किन–किन लोगों के होते हैं। निम्न श्लोक में बताया गया है–

प्रसुप्तास्तत्वलीनानां, तन्ववस्थाश्च योगिनाम्।
विच्छिन्नोदार रूपाश्च, क्लेशा: विषयसङ्गिनाम्।।

अर्थात् तत्वलीन (प्रकृतिलीन) के कर्माशय प्रसुप्त रूप में होते हैं। योगियों के क्रियायोग तथा समाधि के द्वारा तन्वीकरण को प्राप्त हो जाते हैं। विषयसंगियों के विच्छिन्न तथा उदार रूप होते हैं। तत्वलीन योगियों के लिए कर्माशय संस्कार प्रसुप्त होते हैं। प्रसुप्त कर्म बीज भाव में रहते हैं, बाद में विवेकाग्नि में जला दिये जाते हैं।

योगी अपने क्लिष्ट कर्माशय को पहले तप स्वाध्याय तथा ध्यानयोग के द्वारा तनु कर लेते हैं। विवेक ज्ञान हो जाने पर इस तनु हुए क्लिष्ट कर्माशय का भी दाह हो जाता है। विच्छिन्न और उदार कर्म सांसारिक लोगों के होते हैं, जो स्थूल शरीर द्वारा भोगने पड़ते हैं। योगी के कर्म संस्कारों का भुगतान सूक्ष्म तथा कारण शरीर में ही होता रहता है। सिद्धयोग की परम्परा में गुरुदेव अपने शिष्यों के क्लिष्ट संस्कारों का भुगतान अपने संकल्प से सूक्ष्म तथा कारण शरीर

द्वारा ही कर दिया करते हैं। वे उनके क्लिष्ट संस्कारों को अपने शरीर में लेकर स्वयं ही भुगतान भी कर लेते हैं। दादा गुरु महाप्रभुजी के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं, जिनमें उन्होंने शिष्यों के क्लिष्ट संस्कारों को स्वयं ही भोग लिया। विस्तारभय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

योगियों का उद्देश्य कर्म–बन्धनक्षय करना है। कर्म–जाल को योगी ही सही तरीके से काटना जानता है। **'योगः कर्मसु कौशलम्'** का यही अभिप्राय है। कर्म–जाल को क्रिया योग से तनु (हल्के) कर दिये जाते हैं। हल्के हुए यह कर्माशय **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः'** के सिद्धान्तानुसार ध्यानयोग के द्वारा उनको दग्ध बीजभाव की दशा तक पहुंचाया जाता है। विवेक ज्ञान के साथ ही योगी को धर्म–मेघ समाधि की प्राप्ति हो जाती है, जिसके उपरान्त **'ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः'** के अनुसार योगी के क्लेश कर्म की निवृत्ति होने पर योगी निर्बीज समाधि में, स्वरूप में अवस्थित रहता है। योग के अतिरिक्त कर्मबन्धन से छूटने का शीघ्र तथा दृढ़ उपाय और कोई नहीं है। गीता के वचन हैं–

युक्तः कर्मफल त्यक्त्वा, शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण, फले सक्तो निबध्यते।।

अन्यत्र भी भगवान ने कहा है–

योग संन्यस्त कर्माणं, ज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।।

अर्थात् योग के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को संयस्त करके ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण संशय का नाश किये हुए आत्मारामी योगी को कर्म बाँधते नहीं है। योगी पाप–पुण्य से निर्लिप्त हो जाता है। योग–दर्शन का सूत्र–

कर्माशुक्लाकृष्ण योगिनः त्रिविधमितरेषाम्।

अर्थात् योगी के कर्म न पाप के होते हैं न पुण्य के। सांसारिकों के तीन प्रकार के होते हैं। पुण्य के, पाप के तथा पुण्य–पाप मिश्रित। भगवान ने गीता में भी यही बात कही है–

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च, त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यागिनां प्रेत्य न तु, संन्यासासिनां क्वचित्।।

इसलिए योग ही एकमात्र उपाय है जिससे मनुष्य कर्मबंधन को काट डालता है। जिसके उपरान्त ही वह अपने नित्य, शुद्ध स्वरूप में अवस्थित रह सकता है। अतः जन्म–मरणरूपी भवचक्र से छूटने के लिए बुद्धिमान को योग का अनुष्ठान करना ही चाहिए।

▣▣▣

सिद्ध कबीर के चमत्कारिक चरित्र

श्री एस.आर. सागर

यों तो संसार में समय–समय पर बड़े–बड़े संत हुए हैं किंतु एक समय एक ऐसे सन्त भी हुए जिनका तेज उस जमाने के सन्तों में सूर्य की भांति चमकता था इनका नाम संत कबीर है। संत कबीर ने पाठशाला की शिक्षा बिल्कुल प्राप्त नही की थी। वे बिल्कुल ही अनपढ़ अशिक्षित थे किंतु वेद शास्त्रों का ज्ञान इन्हें बड़े–बड़े विद्वानों से अधिक था।

एक बार काशी में बहुत बड़े शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। भारतवर्ष के उच्च कोटि के महान वेद शास्त्रों के ज्ञाता पंडित इसमें एकत्र हुए थे। शास्त्रार्थ में भारतवर्ष के कुछ विद्वान एक ओर थे और दूसरी ओर प्रकाण्ड विद्वान सर्वानन्द थे। यह इतने महान् प्रकाण्ड पंडित थे कि अपने अर्थ को सिद्ध करने के लिए वेद व शास्त्रों के ऐसे प्रमाण दिया करते थे कि दूसरा व्यक्ति इनके आगे निरुत्तर हो जाया करता था। जब वह देखते थे कि दूसरी ओर कोई विद्वान पंडित है तो अपनी बात को सही करने के लिए वेद–मंत्रों की स्वयं रचना कर लिया करते थे और इस तरह अपने साथ मुकाबल करने वाले को किसी न किसी तरह अवश्य हरा दिया करते थे। इस शास्त्रार्थ सम्मेलन में भी ऐसा ही हुआ कि पंडित सर्वानन्द ने सब को हरा दिया। और शास्त्रार्थ में आये हुए विद्वानों ने सर्वानन्द जी को सर्वाजीत की उपाधि दे दी। सर्वानन्द सर्वाजीत की उपाधि प्राप्त कर खुशी के साथ अपने घर पहुंचे और अपनी मां से कहा कि हे मां आप मुझे सर्वाजीत कह दो क्योंकि आज मैंने बड़े–बड़े विद्वान पंडितो को शास्त्रार्थ में हराया है और उन्होंने मुझे सर्वाजी की उपाधि से विभूषित किया है। पंडित सर्वानंद अपनी मां के बहुत भक्त थे वे उनके हर वचन को वेद वचन ही समझते थे। अपने पुत्र की इस बात को सुनकर मां ने कहा बेटा अभी तू सर्वाजीत कहलाने का अधिकारी नही है। क्योंकि काशी में एक व्यक्ति रहता है जब तक तू उससे शास्त्रार्थ करके नहीं आयेगा तब तक तुझे मैं सर्वाजीत नहीं कह सकती। सर्वानन्द ने कहा ऐसा कौन आदमी महान प्रकाण्ड विद्वान है जो मुझसे भी विद्वान है। उसकी माँ ने कहा बेटा काशी में कबीर नाम के एक सन्त हैं उनको जब तक तू शास्त्रार्थ में हरा कर नहीं आयेगा तब तक मैं तुम्हे सर्वाजित नही कह सकती। यह बात सुनकर पंडित सर्वानन्द अपनी विद्वता के घमण्ड में आकर बैल पर शास्त्रों को लादकर कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने चल पड़े। जब पंडित सर्वानन्द कबीर साहब के यहाँ पहुँचे तो संत कबीर को रामानन्द की मंडली के बीच में बैठा पाया। जब सन्त कबीर ने पंडित सर्वानन्द को देखा तो कबीर उठकर खड़े हो गये। और कहा आइये पंडित सर्वानन्द जी कहिये कैसे आना हुआ? सर्वानन्द ने कहा कि मैंने शास्त्रार्थ सम्मेलन में प्रकाण्ड विद्वानों को शास्त्रार्थ से हराकर सर्वाजीत की उपाधि प्राप्त की है। और आज मैं आपसे शास्त्रार्थ करने आया हूँ। इतना सुनकर

कबीर संत ने कहा कि आपने इतने प्रकाण्ड विद्वानों को हरा दिया तो मैं तो एक साधारण अनपढ़ अशिक्षित व्यक्ति हूँ आप सर्वाजीत है आपने इतने महान विद्वानों को हरा दिया तो मेरी क्या शक्ति है जो आपसे शास्त्रार्थ कर सकूं। सर्वानन्द ने कहा कि मेरी माँ ने कहा है कि जब तक तू संत कबीर से शास्त्रार्थ में नहीं जीतेगा मैं तुझे सर्वाजीत नहीं कह सकती।

इतना सुनकर कबीर ने कहा कि आप बिना शास्त्रार्थ किये हुए ही मुझे हारा हुआ मान लें तुम चाहो तो एक कागज पर तुम स्वयं लिखकर मेरा अँगूठा लगवा लो। यह सुनकर पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में जीत गये व कबीर जी हार गये और ऐसा लिखकर कबीर जी का अंगूठा लगवा लिया। इसके बाद पंडित सर्वानन्द प्रसन्नता पूर्वक अपनी माँ के पास पहुँचे और वह कागज उन्हें दिखाया। जब सर्वानन्द की माँ ने जब कागज को खोल कर पढ़ा तो उसमें लिखा हुआ था शास्त्रार्थ में कबीर जी जीत गये। और पंडित सर्वानन्द हार गये। इतना पढ़कर सर्वानन्द की मां ने कहा कि बेटा मैंने पहले ही कहा था कि तू कबीर से शास्त्रार्थ में जीत नहीं सकता। इतना सुनकर पंडित सर्वानन्द ने वह काज अपने हाथ मे ले लिया और स्वयं पढ़ा तो बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि इस कागज पर स्वयं अपने हाथ से सर्वानन्द ने लिखा था "पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में जीत गये" और कबीर जी हार गये। वे सोचने लगे मेरे साथ धोखा तो नहीं हुआ। या यह कोई सिद्ध पुरुष है? किंतु संशय बना रहा और पुनः अपनी सम्पूर्ण पुस्तकों को बैल पर लाद कर कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने चल पड़े। सर्वानन्द ने कबीर के पास जाकर फिर शास्त्रार्थ करने को कहा तो फिर कबीर जी ने वे ही शब्द कहे कि पंडित जी मैंने पहले भी कहा था कि आप अपने हाथ से लिख लें कि पंडित सर्वानन्द जीत गये' और कबीर हार गये अब चाहे तो किसी अन्य व्यक्ति से लिखवा लें। सर्वानन्द ने वे ही शब्द किसी दूसरे व्यक्ति से लिखाये कि 'पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में कबीर जी से जीत गये और इस लिखे हुए कागज को लेकर वे वापस फिर अपन मा के पास आये और कहा ले पढ़ ले कौन हारा और कौन जीता है। जब उनकी माँ ने उस कागज को खोलकर पढ़ा तो कहा बेटा तू वही कागज ले आया है इसमें तो यही लिखा है कि पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में कबीर जी से हार गये। इस प्रकार की दुबारा आश्चर्यजनक बात को देखकर पं. सर्वानन्द के हृदय में निश्चय हो गया कि कबीर कोई साधारण पुरुष नहीं है। बल्कि यह परम तपस्वी साधक है अथवा कोई परम पूर्ण सिद्ध है। पंडित सर्वानन्द वापस लौटकर कबीर साहब के स्थान पर गये और उनके चरणों में जाकर गिर पड़े तथा कहने लगे मैं आपको अज्ञानतावश पहचान नहीं सका। मैं आपकी शरण में आया हूँ। फिर भी पंडित सर्वानन्द और कबीर के बीच में शास्त्र–चर्चा चलती रही। और कबीर की एक बात का भी उत्तर सर्वानन्द नहीं दे सके।

पं. सर्वानन्द जानबूझ कर वेद मंत्र गलत बोलते थे जिनको कबीर जी शुद्ध करते जाते थे। अन्त में हार कर सर्वानन्द ने कबीर जी से दीक्षा ले ली और कबीर मिशन का बहुत बड़ा प्रचार फिर पं. सर्वानन्द ने भारतवर्ष में किया।

योग दिव्य अविनाशी जीवन है।

आचार्य अमित कुमार मिश्र, शुक्लागंज (उन्नाव)

अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जी सिद्धगुफा के कण–कण में।
जाते ही भर जाती है लहर योग की हर मन में।।

महाप्रभु श्री रामलाल जी योग योगेश्वर भगवान।
योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी परमेश्वर गुरुदेव महान।।
सिद्धगुफा से किया प्रसारित सिद्धयोग को जन–जन में।
जाते ही..................................

जीवन लगा तपश्चर्या में योगिराज श्री गुरुवर का।
धाम बनाया ऐसा सारे जग को रूप दिया घर का।।
व्यक्ति मात्र को बना दिया पारंगत जीवन के रण में।
जाते ही..................................

योग दिव्य अविनाशी जीवन है गुरुदेव बतलाते।
'जीवन तत्व साधन' गुरुवर नित ही सबको करवाते।।
कहा कि, 'लल्ला! सिद्धयोग को कर लो धारण जीवन में।
जाते ही..................................

परम प्रभु श्री महाप्रभु हैं ध्यान इनका नित करना।
तीन घंटे लल्ला जप साधन तुम करते रहना।।
है भाग्य जो मिले प्रभु जी कर लो धारण क्षण–क्षण में।
जाते ही ....

सिवा आपके सारे जग में कोई नहीं हमारा है।
हे गुरुदेव! सिद्धयोग को तेरा बड़ा सहारा है।।
संस्कार से मिले 'संस्कार' बसे प्रभु अमित मन में।।
जाते ही..................................

▣▣▣

कर्म-फल-त्याग

स्व. श्री साने गुरु

गीता ने कर्म-फल-त्याग सिखाया है। अपनी रुचि का सेवा-कार्य हमें ज्ञान विज्ञान-पूर्वक निष्ठा से, मन से तथा अपने वर्ण के अनुसार करना चाहिए। उस कर्म को उत्कृष्टता के साथ पूरा करने के लिए जीवन को संयत करना चाहिए। आहार-विहार नियमित बनाना चाहिए शरीर और मन प्रसन्न व नीरोगी रखना चाहिए। इस प्रकार जीवन की सार्थकता का लाभ लेना चाहिए। सेवा-कर्म करते-करते एक दिन सारी सृष्टि के साथ स्नेह जोड़ना है, मन का भेदातीत बनाकर केवल चिन्मय साम्राज्य में ही रमना है।

लेकिन इस सब का साधने के लिए एक और चीज की जरूरत है, एक और दृष्टि की आवश्यकता है। वह दृष्टि है फल की आशा नहीं रखना। कर्म में इतने तल्लीन हो जाना चाहिए कि फल का विचार करने का समय ही न मिले। जीवन कर्म मय ही हो जाय। जनाबाई कहती थीं- 'प्रभु ही खाना प्रभु ही पीना'। प्रभु से यहाँ मतलब है अपने ध्येय से, अपने सेवा-कर्म से। इस सेवा कर्म को ही खाना है, सेवा-कर्म को ही पीना है। इसका मतलब यह है कि खाते ए भी हमें कर्म का विचार हो और पीते हुए भी कर्म का विचार। सोते हुए भी कर्म का चि हो। गाँधीजी ने पहले एक बार कहा था कि मुझे हरिजनों की सेवा के ही स्वप्न दिखाई देते हे ऐसा दिखाई देता है कि मन्दिर खुल रहे हैं। स्वामी रामतीर्थ को स्वप्न में कठिन प्रश्नों के हल दिखाई देते थे। अर्जुन के बारे में भी ऐसी ही बात कही जाती है। श्रीकृष्ण का अर्जुन पर अधिक प्रेम देखकर उद्धव उससे ईर्ष्या रखता था। यह बात श्रीकृष्ण के ध्यान में आई। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा- 'उद्धव जाओ और यह देख आओ कि इस समय अर्जुन क्या कर रहा है।' उद्धव चले। अर्जुन अपने कमरे में गहरी नींद में सोया था, लेकिन वहाँ 'कृष्ण-कृष्ण' की मधुर ध्वनि सुनाई देती थी। वह ध्वनि कहाँ से आती है, इसकी खोज उद्धव करने लगा। वह अर्जुन के पास गया उसे क्या दिखाई दिया? अर्जुन के रोम-रोम से 'कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि निकल रही थी। अर्जुन का जीवन कृष्ण के प्रेम से ओत-प्रोत था। नानक ने कहा है- 'हे ईश्वर आपका स्मरण श्वासोच्छवास के साथ-साथ होने दो, भगवान् के स्मरण के बिना जीवन असह्य होने दो। उनका स्मरण ही मानो जीवन है। उनका विस्मरण मानो मृत्यु। उनका स्मरण मानो सारे सुख और उनका विस्मरण मानो सारे दु:ख।

'विपद विस्मरणं विष्णोः सपन्नारायणस्मृतिः।'

और भगवान् का स्मरण ही मानो ध्येय का स्मरण है, स्वकर्म का, स्वधर्म का स्मरण। हममें जिसके लिए जीने और मरने की भावना पैदा होती है वही हमारे लिए ईश्वर स्वरूप है। वही हमारा ईश्वर है। और उसके चिन्तन में हमेशा निमग्न रहना ही परम सिद्धि।

मनुष्य स्वकर्म में इतना निमग्न कब हो सकेगा? जब वह उस कर्म के फल को भूल जायेगा। छोटा बच्चा आम की गुठली को जमीन में गाड़ता है। दूसरे दिन वह उसे फिर खोदकर देखता है। उसे यह देखने की बड़ी उत्कण्ठा रहती है कि उसमें अंकुर फूटा या नहीं; लेकिन यदि वह गुठली बार बार खोदकर देखी गई तो उसमें कभी अंकुर नहीं फूट सकेगा। उसमें कभी भी बौर न आ सकेंगे। रस वाले फल नहीं लग सकेंगे। इसके विरुद्ध यदि उस गुठली को प्रतिदिन पानी पिलाया गया, उसमें खाद दिया गया, उसके पत्तों को बकरी से बचाने के लिए उसके आस–पास काँटे की बाड़ लगा दी और इस प्रकार यदि कोई आदमी उस आम को उगाने के काम में लग गया तो एक दिन उसमें रसवाले फल आये बिना न रहेंगे।

यदि गहराई से देखा जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य का सच्चा आनन्द फल में नहीं कर्म में है। अपने हाथ–पैर अपना हृदय अपनी बुद्धि के सेवा–कर्म में मग्न हो जाने में ही आनन्द है। इग्लैण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन ने जिस दिन मध्य रात्रि के समय अपना बड़ा इतिहास लिख कर समाप्त किया उस समय वह रोया। बारह बज गये थे। रात्रि का सन्नाटा छाया हुआ था। उसने अन्तिम वाक्य लिख डाले। गिबन 25 वर्षों से यह काम करता आ रहा था। इन दिनों उसका प्रत्येक क्षण आनन्द से व्यतीत हुआ, लेकिन उस इतिहास के समाप्त होते ही उसे बुरा लगा। वह बोला– 'अब कल क्या करूंगा? अब कल आनन्द कहां रहेगा? अब क्या पढूंगा? क्या लिखूंगा?' इस कर्म के करने में ही उसे आनन्द था।

बच्चे खेलते हैं। खेलते समय उनके मन में यह विचार नहीं होते कि इससे हमें इतना व्यायाम होगा हमारे शरीर सुधरेंगे। यदि बच्चे इस विचार से खेलें तो उनको खेल का आनन्द नहीं मिल सकेगा। क्या अट्या–वट्या खेलते हुए खिलाड़ी के मन में यह विचार रहता है कि मेरी जांघों का व्यायाम हो रहा है? इस विचार से तो वे घेरा नहीं तोड़ सकते। बच्चे खेल के लिए खेलते हैं। उससे उन्हें जो व्यायाम का फल मिलता है खेलते समय उसकी ओर उनका लक्ष्य नहीं होता।

इसका यह मतलब नहीं कि खिलाड़ी को व्यायाम का फल नहीं मिलता। उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। वह प्रसन्न रहता है। उसका मन प्रफुल्ल रहता है। उसे कितने फल मिलते हैं। खेलने जाने के पूर्व उसके मन में व्यायाम का विचार रहता है। वह सोचता है कि यदि मैं रोज खेलूं तो मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। पहले मन में फल का विचार रहता है। लेकिन जहां कर्म शुरू हुआ कि फल को भूल जाना चाहिए। तब फिर वह कर्म ही धर्म प्रतीत होना चाहिए। वह साधन ही साध्य रूप में प्रतीत होना चाहिए। प्रत्येक प्रयत्न मानो कर्म सिद्धि है प्रत्येक दौड़ मानो विजय है। यह अनुभूति होनी चाहिए कि हमारा प्रत्येक कदम ध्येय प्राप्ति के लिए है। प्रयत्न ही मानो सफलता है।

बेलदार हाथ में हथौड़ा लेकर पत्थर तोड़ता रहता है मान लीजिए यदि पत्थर दस

चोट में नहीं टूटा और 11 वीं चोट में टूट गया तो क्या वे पहली 10 चोटें व्यर्थ गईं? प्रत्येक चोट पत्थर के अणुओं के ऊपर आघात कर रही थी प्रत्येक चोट ध्येय की ओर ले जा रही थी।

कर्म उत्कृष्ट करने के लिए ही कर्म–फल त्याग की जरूरत होती है। फल का सतत् चिन्तन करने की अपेक्षा जो कर्म में ही रम जाता है उसे अधिक बड़ा फल मिलता है। क्योंकि पद–पद पर फल का चिन्तन करते रहने वाले का बहुत-सा समय चिन्तन में ही चला जाता है। जो किसान पद–पद पर यह चिन्ता करता हुआ बैठा रहे कि यदि वर्षा न हुई तो अच्छा भाव नहीं हुआ तो चूहे लग गये तो और फल की चिन्ता करता रहे तो उसके मन में अनन्त आशा नहीं रह सकेगी उसके कर्म उत्कृष्ट नहीं हो सकेंगे। इसके विरुद्ध जो किसान कर्म में रंग गया है खाद डालता है, सिंचाई करता है निराई करता है और दूसरी बात सोचने का जिसके पास समय ही नहीं है इसमें कोई शंका नहीं की उसे अधिक उत्कृष्ट फल मिलेगा।

कमल के फूल को तो आप जानते ही है। उसके बारे में रामकृष्ण परमहंस एक बात हमेशा कहते थे कमल विकास चाहता है। रात दिन कीचड़ में पैर गड़ा कर वह इसके लिए प्रयत्न करता रहता है। वह सूर्य की ओर मुँह करके खिलने का प्रयत्न करता है। उस कमल की साधना एक सी अखण्ड चलती रहती है। वह अपना विकसित होना भूल जाता है। मानो फूल को ही भूल जाता है। वह ठंड धूप हवा वर्षा कीचड़ आदि में रहकर ही प्रयत्न करता रहता है। लेकिन एक दिन आता है जब कि वह कमल अच्छी तरह खिलता है उसे सूर्य की किरण पती है हवा झुलाती है गीत सुनाती है। कमल को इस बात का ख्याल ही नहीं रहता है कि मैं खिल रहा हूँ। उसे मालूम ही नहीं होगा कि मैं सुगन्ध से पवित्रता से पराग से भर रहा हूँ। अन्त में भ्रमर गुंजार करता हुआ आता है। वह कमल की प्रदक्षिणा करता है और कमल के अन्तरंग में प्रवेश करके कहता है– पवित्र कमल तू खिल चुका है। तुझमें कितनी सुगन्ध है तेरा कैसा सुन्दर रंग है तुझ में कितना मीठा रस है?

मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात होनी चाहिए। उसे फल को भूल जाना चाहिए। यदि फल उसके चरणों पर आकर गिर जाय तो भी उसे उस पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। ध्रुव के सामने प्रत्यक्ष भगवान आकर खड़े हो गए फिर भी उनकी आंखें बन्द ही रहीं। वह तो नारायण के चिन्तन में तल्लीन हो गया था। साधना में इतनी समरसता का होना महत्व की बात है।

भारतीय संस्कृति साधना सिखाती है। अधीर मत बनो उल्लू मत बनो फल के लिए लालायित मत रहो विह्वल मत बनो। महान् फल चुटकी मारते ही नहीं मिलते। उसके लिए अनन्त साधना और अखण्ड अविरत श्रम की आवश्यकता रहती है। बरगद का बड़ा पेड़ दो दिन में इतना नहीं बढ़ता। मैथी की सब्जी दो दिनों में उग आती है और चार दिन में सूख जाती है लेकिन एक बार बरगद का पेड़ जम जाता है तो फिर हजारों लोगों को छाया देता है। उसकी शाखायें आकाश को छूने लगती हैं। उसका सिर आकाश से लग जाता है और जड़ पाताल

गंगा से भेंट करती है। लेकिन यह स्पृहणीय और महान् प्रसार इस महान् वैभव को प्राप्त करने के लिए पत्थर कंकर में जड़ें जमाने के लिए उस वटवृक्ष को कितने वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ता है।

विनता और कद्रू की कहानी तो सुप्रसिद्ध है। कद्रू के यहाँ जब एक हजार सर्प के बच्चे हुए तो विनता अधीर हो गई। उसने एक अण्डा फोड़ा लेकिन वह परिपक्व नहीं हुआ था। उसमें से लंगड़ा लूला अरुण निकला। विनता दुखी हो गई। उसे अपनी जल्दबाजी का इनाम मिल गया लेकिन अपने अनुभव से वह होशियार बन गई। उसने दूसरा अण्डा नहीं फोड़ा। वह एक हजार वर्ष तक ठहरी रही और एक हजार वर्ष के बाद पक्षिराज गरुड़ बाहर निकले और वह भगवान विष्णु के वाहन बन गए।

यदि अपने कर्म के कमजोर फल नहीं चाहते हो और ऐसे भव्य दिव्य फल चाहते हो तो उसके लिए सैकड़ों वर्षों तक परिश्रम करना पड़ेगा–साधना करनी पड़ेगी। आज भारतीय संस्कृति के उपासक साधना भूल गए हैं। वे चुटकी में फल चाहते हैं। वे जल्दी ही स्वतन्त्रता चाहते हैं लेकिन वे लाखों ग्रामों में जाकर वर्षों तक साधना करना नहीं चाहते। क्रान्ति क्षणभर में नहीं होती। राष्ट्रीय शिक्षा के आचार्य विजापुरकर ने एक बार कहा– अंग्रेजों को राज्य प्राप्त करने में 150 वर्ष लग गये। अब उनको निकालने में 300 वर्ष लगेंगे इसी विचार से हमको हमेशा प्रयत्न करते रहना चाहिए।

कर्म फल त्यागी मनुष्य कभी निराश नहीं होता। क्योंकि फल पर उनकी दृष्टि ही नहीं होती। जो निरन्तर फल का चिन्तन करता रहेगा वह दुःखी होगा निराश होगा। भगवान बुद्ध ने एक–एक गुण प्राप्त करने लिए एक–एक जन्म लिया था। जीवन की पूर्णता प्राप्त करने में उन्हें सैकड़ों जन्म लेने पड़े।

भगवान् की प्राप्ति के लिए कितनी ही साधना आप क्यों न करें वह थोड़ी ही है। ध्येय की प्राप्ति के लिए ऐसी ही अमर आशा होनी चाहिए। प्रयत्नों से, कष्टों और परिश्रम से घबराना नहीं चाहिए। उत्तरोत्तर अधिक उत्कृष्ट कर्म होने चाहिए। जो हजारों वर्ष तक परिश्रम करने के लिए तैयार है उसे इसी घड़ी फल मिल जायगा।

लेकिन अपने मन का सन्तोष का फल तो हमेशा मिलता रहता है। "मैं अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहा हूँ, आवश्यकता से अधिक परिश्रम कर रहा हूँ," मेरे इस आन्तरिक समाधान को कौन छीन सकेगा? हमें यह शरीर, देह बुद्धि और हृदय मिला है। ईश्वर ने हमें यह पूँजी पहले से ही दे रखी है। हमें यह जो मिला है उससे ऋण मुक्त होने के लिए सेवा करनी चाहिए। समाज हमें बहुत कुछ देता है। सृष्टि भी हमको कुछ दे रही है। उसके ऋण से उऋण होने के लिए काम में जुटे रहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

और यदि हमें फल न मिले तो भी समाज अमर है व्यक्ति चला जाता है; लेकिन

समाज चिरंतर है। काम करने वाले जाते हैं; लेकिन काम तो शेष रह ही जाता है। उस काम को पूरा करने के लिए समाज है ही। मेरे शेष बचे हुए काम को कौन अपने हाथ में लेगा? मेरे हाथों लगाये वृक्ष को कौन पानी पिलायेगा? मेरे श्रम का फल तो किसी न किसी को मिलेगा ही और वह जिसको भी मिलेगा वह तो मेरा अपना ही है। उसमें और मुझमें कहाँ भेद है?

हमारी संस्कृति में अदृष्ट फलों की एक मधुर कल्पना है। उथली बुद्धि के लोग इस कल्पना का मजाक उड़ाते है; लेकिन जैसे–जैसे इस कल्पना का विचार करते हैं वैसे–वैसे आनन्द होता है। तुम्हारे प्रयत्नों के फल मिलेंगे, लेकिन वह तुमको प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देंगे। तुम्हारी कल्पना के दिव्य चक्षुओं से ही वह दिखाई देंगे। न दिखने वाला फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। हिन्दुस्तान के स्वराज के लिए कितने बड़े–बड़े व्यक्ति जन्म भर कष्ट सहते रहे लेकिन फल अब दिखाई दे रहा है। मुझे यह देवों की प्रियभूमि स्वतन्त्र और मुक्त दिखाई दे रही है। मुझे ऐसा हिन्दुस्तान दिखाई दे रहा है जिसमें रोग–अकाल नहीं है अज्ञान नहीं है, रूढ़ि कहीं नहीं हैं, झगड़े नहीं है, दण्डे नहीं है, द्वेष नहीं है, मत्सर नहीं है सारी जातियाँ और धर्म एक–दूसरे से हिल–मिलकर रहते हैं। सबके पास अनाज है, वस्त्र है, रहने के लिए घरबार है। न्यायमूर्ति को अपनी विशाल दृष्टि से, शास्त्रपूत और श्रद्धा पूत दृष्टि से वे अदृश्य फल दिखाई दे रहे थे लोगों को अपने श्रम का अवश्य फल मिलेगा, उनका श्रम व्यर्थ नहीं जायगा। संसार में कोई बात व्यर्थ नहीं जाती।

अदृश्य फल का एक और भी अर्थ है। नदी बहती है। कितने ही वृक्षों और बेलों को वह जीवन प्रदान करती है; लेकिन वह यह बात नहीं जानती। उसके उदर में कितने ही जलचर समाये हुए हैं लेकिन उसे इसकी जानकारी ही नहीं। उसे इस बात की भी जानकारी नहीं होती कि उसने कितनी भूमि उपजाऊ और समृद्ध की है। उसे यह बात भी मालूम नहीं होती कि उसके कारण कितने कुओं में पानी आया है। नदी बहती है। रात दिन काम करती रहती है। वह नमी पैदा करती है। लेकिन उसे क्या मालूम कि यह नमी कहाँ, किसे और कितनी मिलती है। इस फल के बारे में उसे क्या मालूम। यह उसे दिखाई ही नहीं देता। लेकिन यह फल उसके नाम पर जमा है। यह उसके कर्मरूपी वृक्ष में लगे हुए अनन्त फल हैं।

▣ ▣ ▣

श्री गीतामृत – पदावली

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

गतांक से आगे

संकर वर्ण बनाने वाले, इन दोषों से जो हैं व्याप्त।
उनके कुल के धर्म सनातन, शीघ्र नाश को होते प्राप्त।।43।।

जिन पुरुषों के कुलधर्मों का हो जाता है जब ह्रास।
सुनते हैं, वे मरकर पाते, घोर अनन्त नरक में वास।।44।।

पाप–कर्म पर तुले हुए हम, है यह महाशोक की बात।
राज्य–लोभ से हम उद्यत हैं, करने को स्वजनों का घात।।45।।

अस्त्र–शस्त्रधारी ये कौरव, लड़ूँ न तो भी ले लें प्राण।
शस्त्रहीन मुझको ये मारें, इससे बढ़कर क्या कल्याण।।46।।

संजय ने कहा :

रथ में अर्जुन बैठ गया तब, वहाँ यही कहकर रण में।
धनुष–बाण भी वहीं छोड़कर, शोकाकुल होकर मन में।।47।।

अध्याय – 2

संजय उवाच

करुणा से उद्विग्न हृदय औ अश्रुपूर्ण जिनके लोचन।
देख बहुत शोक से व्याकुल बोले उनसे मधुसूदन।।1।।

श्रीभगवानुवाच

भीषण समर-भूमि में अर्जुन! कहो, शोक यह है कैसा?
स्वर्ग तथा यश को यह हरता, आर्य नहीं करते ऐसा।।2।।

पौरुषहीन बनो मत अर्जुन! है यह तेरे योग्य नहीं।
तजो शीघ्र दुर्बलता मन की, उठो, डटो संग्राम-मही।।3।।

अर्जुन उवाच

धनुष-बाण ले भीष्म, द्रोण से, कैसे करूँ, कृष्ण ! संग्राम।
पूजनीय हैं ये दोनों ही, उन्हें मारना पाप महान।।4।।

गुरुजन की हत्या से उत्तम, भिक्षा से भोजन पाना।
लोभ-ग्रस्त भी इन्हें मारना, मानो रक्त-सना खाना।।5।।

विजय हमारी या उनकी हो उत्तम क्या है मुझे न ज्ञात।
जीना अनुचित जिन्हें मारकर , सम्मुख हैं वे कौरव तात।।6।।

व्याकुलता से बुद्धिहीन हो, पूछ रहा हूँ, धर्म न ज्ञात।
मैं शरणागत शिष्य तुम्हारा, दो शिक्षा मुझको हे तात।।7।।

ज्ञात नहीं क्या कभी हटेगा, महाशोक यह मम, यदुराज।
पाकर वैभव इस धरणी का एवं देवगणों का राज।।8।।

संजय उवाच

ऐसा कहकर पार्थ कृष्ण से , जिससे बड़ा वीर था कौन।
बोला नहीं लड़ूँगा केशव!, और हुआ तब अर्जुन मौन।।9।।

शोक ग्रस्त यों होकर अर्जुन, सेनाओं के बीच रहा।
हँसकर तब उससे हे राजन्! केशव ने यों वहाँ कहा।।10।।

श्री भगवानुवाच

करते अनुचित शोक यहाँ तुम, तथा ज्ञान की कहते बात।
कोई मरे, जिये या कोई, पण्डित शोक न करते तात।।11।।

हम, तुम अथवा राजा ये सब सत्वहीन थे कभी नहीं।
ऐसा भी तो कभी न होगा, हम सब होंगे नहीं कहीं।।12।।

बचपन, यौवन तथा बुढ़ापा, मानव तन में ज्यों आते।
उसी भाँति यह देह बदलती, वीर न इससे घबराते।।13।।

सर्दी–गर्मी सुख–दु:ख–दाता, विषयेन्द्रिय के योग सभी।
है अनित्य क्षणभंगुर ये सब, सहो इन्हें अर्जुन! तुम भी।।14।।

जिन पुरुषों को ये, नरपुंगव! नहीं कभी भी दुख देते।
वे सुख–दु:ख में सदा धीर रह, अन्त अमर पद पा लेते।।15।।

नहीं असत् की सत्ता कोई, सत का नहीं अभाव कभी।
दोनों ही का तत्व जानते, सच्चे ज्ञानी पुरुष सभी।।16।।

(शेष अगले अंक में)

चित्तवृत्तियाँ योग में बाधक

डा. जे. पी. शर्मा, पांवटा साहिब (हि.प्र.)

साधारणतः मनुष्य योग के गूढ़ भाव को नहीं समझ पाते तथा योग शब्द की व्याख्या मुख्यतः आसन, प्राणायाम से जोड़कर करते हैं, जो उचित नहीं है। आजकल आसन, प्राणायाम सिखाने वाले टी.वी. चेनलों की बाढ़ सी आ गई है। अक्सर लोग बातें करते हैं कि मैं प्रतिदिन आधा घंटा तक 'योगा' करता हूँ, जब उनसे पूछा जाता है कि योग के लिए क्या-क्या करते हो? तो बतलाते हैं, अमुक समय तक दीर्घश्वांस (भस्त्रिका), कपालभाति तथा अनुलोम-विलोम (नाड़ी-शोधन प्राणायाम) इत्यादि करता हूँ। वे इन क्रियाओं के पूरे करने को ही योगा करना समझते हैं। प्रथम तो मैं उनके 'योगा' शब्द से ही सहमत नहीं हूँ। लोगों ने 'योग' को योगा' कहना शुरू कर दिया है। जो न तो तर्कसंगत है और न तथ्य पर्याय है। योगा का कोई अर्थ नहीं है। वस्तुतः योग का अर्थ है, योग, जोड़, मिलन, सम्बन्ध, एकरूपता इत्यादि। योग के लिए कम से कम दो की आवश्यकता है। एक और एक का योग दो होता है, उसी प्रकार हमारी आत्मा का जोड़ परमात्मा से होने पर 'योग' कहा जायेगा। साधक को योग के लिए इष्टदेव! गुरु! ईश्वर! देवी, देवता इत्यादि का सहारा लेना आवश्यक है। इनकी कृपा के बिना योग सम्भव नहीं है। महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में योग को इस प्रकार परिभाषित किया है:-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। योग साधक के लिए चित्तवृत्तियों पर संयम रखना आवश्यक है। क्योंकि:-

तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

उस समय दृष्टा की अपने रूप में स्थिति हो जाती है। अतः जब मनुष्य में चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय दृष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, अर्थात् साधक कैवल्यावस्था को प्राप्त हो जाता है। मन की चंचलता, मन के भाव, मन स्थिति, मनःस्मृति, क्लेश, मन की विकृतियाँ, मन के भाव, विभिन्न आशायें ही चित्तवृत्तियाँ होती हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में योगेश्वर कृष्ण चन्द्र महाराज से अर्जुन ने कहा है:-

मनबहुचँचल प्रथम स्वभावा, दुत गतिवंत सक्ति अति पावा।

हुइहै झंझावात समाना, तेहि निग्रह दुष्कर मैं जाना।।

(6/34)

अर्थात् हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाव वाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है इसलिए मन को वश में करना, मैं वायु को रोकने की तरह अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। इस पर श्री भगवान बोले–

कुन्तीसुवन असांच न सोऊ, मन चंचल दुर निग्रह होऊ।

करि अभ्यास राग तजि जोइ, तौ मन अबस बस होई।।

(6/35)

हे अर्जुन, निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे, कुन्तीनन्दन अर्जुन, यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। अब हमें चित्तवृत्ति के बारे में भलीभांति समझ लेना आवश्यक है। चित्तवृत्तियां असंख्य है। यथा–

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।। (योगदर्शन, 1/5)

अर्थात् क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेदो वाली, वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं। योग साधन में क्लिष्ट वृत्तियाँ अनेकों प्रकार से विघ्न पैदा करती हैं तथा अक्लिष्ट वृत्तियाँ, क्लेशों को नष्ट करके योग साधना में सहायक होती है। अतः योग साधना में क्लिष्ट वृत्तियों को सर्वप्रथम दूर करें तथा बाद मे अक्लिष्ट वृत्तियों को भी हटा दें। पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं–

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।।

(1) प्रमाण, (2) विपर्यय, (3) विकल्प, (4) निद्रा, (5) स्मृति।

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि

अर्थात् प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की होती है, जैसे–

(1) **प्रत्यक्ष–प्रमाण:–** मनुष्यों में मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की प्रधानता होती हैं। अतः मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के जानने में आने वाले जितने भी पदार्थ हैं, उनका अन्तःकरण और सभी इन्द्रियों के साथ बिना किसी व्यवधान के सम्बन्ध होने से जो भ्रान्ति तथा संशयरहित ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष अनुभव से होने वाली **प्रमाणवृत्ति** है। इनके प्रत्यक्ष दर्शन से सांसारिक क्षण भंगुरता का निश्चय हो जाता है अथवा मनुष्य दुःखों का अनुभव करता है। अतः मनुष्य को वैराग्यता प्राप्त हो जाती है जिससे चित की वृत्तियाँ स्वयं रुक जाती हैं तथा मनुष्य बड़ी श्रद्धा और उत्साह के साथ योग साधना पथ में आगे बढ़ने लगता है। इसे अक्लिष्ट प्रमाणवृत्ति कहते हैं। परंतु जब प्रत्यक्ष दर्शनों से मनुष्य सुख का अनुभव करने लगे तथा उनके भोगने में आशक्ति बढ़ जाय, उससे होने वाली प्रमाण वृत्ति क्लिष्ट कहलाती है।

(2) **अनुमान–प्रमाण:–** जब प्रत्यक्ष दर्शन करते–करते, किसी पदार्थ के अप्रत्यक्ष स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है, उसे अनुमान से होने वाली प्रमाणवृत्ति कहते हैं। जैसे धुँआ को

देखकर सहज ज्ञान होता है कि आग जल रही है। नदी में बाढ़ देखकर समझ लेते हैं कि कहीं वर्षा हुई है। शीतल हवा के स्पर्श से जान लेते हैं कि सुदूर में कहीं वर्षा हुई है, इत्यादि। इनसे भी जब वैराग्य प्राप्त हो अथवा योग साधना में श्रद्धा बढ़ने लगे तो अक्लिष्ट अनुमान प्रमाण तथा इसके विपरीत ज्ञान होने पर क्लिष्ट अनुमान प्रमाण वृत्ति कहते हैं।

आगम–प्रमाण:– जो ज्ञान हमें वेदों, शास्त्रों तथा पुस्तकों अथवा महापुरुषों द्वारा लिखे काव्यों से प्राप्त होता है, उन्हें हम आगम प्रमाण कहते हैं। इनमें भी जब मनुष्य भोगों से वैराग्यता प्राप्त करता है तथा योग साधना में श्रद्धा–उत्साह बढ़ता है, उसे **अक्लिष्ट आगम–प्रमाणवृत्ति** कहते हैं। इसके विपरीत होने पर क्लिष्ट आगम–प्रमाण वृत्ति जानना चाहिए। गीता में भगवान कृष्णचन्द्र महाराज ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है–

इन्द्रिय विषयन्ह करिसंयोगा, प्रगटें दुःख कारन जग भोगा।
आदि अन्तयुत सो थिर नाहीं, रमें न बुद्धिमान तेहिं माहीं।।

(5/22)

अर्थात् इन्द्रिय और विषयों के संयोग से पैदा होने वाले सब भोग, यद्यपि विषयी मनुष्यों को सुखरूप लगते हैं, तो भी वह सब दुःख देने वाले होते हैं, तथा आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य है। इसलिए हे, अर्जुन! बुद्धिमान विवेक पुरुष उनमें नहीं रमते।

2. विपर्यक वृत्ति:–

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्

अर्थात् ऐसा ज्ञान जो उस वस्तु के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं है, विपर्यय कहलाता है। जैसे सीप में चाँदी का आभाष। ऐसी वृत्ति से जब भोगों से अलगाव उत्पन्न प्रतीत हो, उसे अक्लिष्ट तथा जब भोगों में सुख का अनुभव होने लगे, उसे **क्लिष्ट विपर्ययवृत्ति** कहा जाता है।

3. विकल्पवृत्ति:–

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।।

अर्थात् जो ज्ञान शब्द के ज्ञान के साथ–साथ होता है तथा वास्तव में जिसका विषय नहीं है, उसे विकल्पवृत्ति कहा जाता है। शब्द के आधार पर पदार्थ की कल्पना करने की वृत्ति को विकल्प ज्ञान समझा जायेगा। जैसे–कोई मनुष्य कही–सुनी बातों के आधार पर अपनी मान्यता के अनुसार भगवान के स्वरूप की कल्पना करके भगवान का ध्यान करता है, पर जिस स्वरूप का वह ध्यान कर रहा है, उसे उसने पहले कभी नहीं देखा है, और न ही वह स्वरूप वेद–शास्त्र सम्मत है और न ही ऐसे स्वरूप में भगवान हैं, केवल कोरी कल्पना ही मात्र है, ऐसी वृत्ति को विकल्पवृत्ति तथा ध्यान को विकल्पध्यान कहते हैं। मनुष्य कल्पनाओं के आधार पर अनेकों संकल्प–विकल्प करता रहता है। केवल सुनी सुनाई बातों को सही

मान बैठता है। अक्सर हर बच्चा अपने बाल्यकाल में अपने दादा–दादी, नाना–नानी की कथायें सुनते आये हैं जिनके अनुसार अनेकों संकल्प–विकल्प होते हैं। अतः इस वृत्ति से जो हमें भगवान के स्वरूप में अवस्थित कर देती है तथा योग साधना में सहायक होती है, वह **अक्लिष्ट विकल्पवृत्ति** कहलाती है, परन्तु जो कल्पनायें हमें भोगों में आसक्त बनाती हैं, उन्हें **क्लिष्ट विकल्पवृत्ति** जानना चाहिए।

4. निद्रावृत्तिः–

अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।।

अर्थात् अभाव के ज्ञान का अवलम्बन (ग्रहण) करने वाली, वृत्ति निद्रा है। मनु ्य जब सो जाता है तब उसे बाहरी वातावरण इत्यादि का ज्ञान नहीं रहता केवल शरीर के ...तरी अंग ही क्रियाशील बने रहते हैं, उसे निद्रा कहते हैं। निन्द्रा के समय अगर कोई बाह्य घटना घटित हो जाय तो नींद में रहने वाले व्यक्ति को उस घटना के बारे में ज्ञान नहीं हो पाता, केवल जागने पर उसे घटित घटना के बारे में पता लगता है। इसे ही निद्रावृत्ति कहा गया है। निद्रा से जागने पर साधक उत्साहित, सात्विक, प्रसन्नचित्त, आलसरहित होने का आभास करता है, उसे **अक्लिष्ट निद्रावृत्ति** कहा जायेगा जिससे साधक योग मार्ग में अग्रसर होता चला जायेगा। यथा–

युक्त रहे आहार विहारा, युक्त चेष्ट सब कर्मन्ह धारा।
जाग्रत सयन उचित रहि जेही, हुइहि योग सिद्धि द्रुत तेही।।

(6/17)

गीता में भगवान कृष्ण, अर्जुन से कहते हैं, दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार–विहार करने वालों का, कर्मों में यथा योग्य प्रयत्न करने वालों का और यथायोग्य सोने तथा जागने वालों का ही सिद्ध होता है। निद्रा से जागने पर अगर आलस बने, अश्रद्धा उत्पन्न हो तथा आराम करने में अत्यन्त सुख ही प्रतीति रहे, उसे क्लिष्ट निद्रा वृत्ति समझना उचित होगा। स्वप्न भी निद्रा काल पुरुष है।

5. स्मृतिवृत्तिः–

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।। (योगदर्शन 1/11)

अर्थात् अनुभव किये गये विषय का न छिपना या प्रकट हो जाना ही स्मृति है। अतः उपर्युक्त प्रमाणवृत्ति, विपर्ययवृत्ति, विकल्पवृत्ति तथा निद्रावृत्तियों द्वारा अनुभव में प्राप्त विषयों के जो संस्कार चित्त में संग्रहित हैं, उनका पुनः किसी निमित्त को आधार बना कर जाग्रत हो जाना ही स्मृति वृत्ति है। अतः स्मृति से मनुष्य का भोगों से छुटकारा मिल जाता है। योग साधना में श्रद्धा तथा उत्साह बढ़ने लगता है, ऐसी स्मृति, अक्लिष्ट है तथा जिस स्मृति से भोगों में सुख का अनुभव होता है, वह क्लिष्ट स्मृति है।

चित्तवृत्तियाँ मनुष्य को हरपल, सोते, जागते, गतिशील रहते बनी रहती हैं। अतः मनुष्य केवल योग परायण रह कर ही इनसे छुटकारा पा सकता है। योग ही एक अमर विद्या है, जो पुनर्जन्म होने तक साथ रहती है, साधना परायण रहते हुए उत्तरोत्तर योग विद्या बढ़ती रहती है, इस विद्या का नाश नहीं होता।

कहावत प्रचलित है–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा जो जस करहिं तेही फल चाखा।

अर्थात् मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे उसी के अनुरूप उसका परिणाम भुगतना होता है। अच्छे कर्म करने से सुख, समृद्धि तथा बुरे कर्म दुःख देने वाले होते हैं। इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। यथा–

जैसा कर्म करेगा बन्दे, वैसा ही फल पायेगा।
बोया पेड़ बबूल का, तो आम कहाँ से खायेगा।।

अर्थात् जिसने बबूल का पौधा लगाया हो तथा आशा आम खाने की रखता हो, तो ये संभव नहीं है। क्योंकि बबूल पर आम नहीं लगते। खेत में अगर जौ के दाने बोये हैं तो जौ की पैदावार ही मिलेगी, उससे गेहूँ नहीं प्राप्त होगा। भाव है कि कर्मों से ही संस्कार बनते हैं, जो चित्त के रूप में अन्तःकरण में संग्रहित रहते हैं। हमारे शरीर में मन की सत्ता है, अर्थात् मन शरीर का राजा है। मन ही से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ संचालित होती हैं। शुद्ध मन में भगवान विराजते हैं मैले–गन्दे मन में शैतान का वास होता है सभी सन्तों ने मन पर अनेकों भाष्य लिखे हैं। योग में मन की ही प्रधानता है, जिसका मन अपने वश में आ गया, जानो उसे योग की प्राप्ति हो गई। दृढ़ मन, सभी कार्य, सुगमता से कर लेता है। गुरु अष्टावक्र ने गुरु दक्षिणा में राजा जनक से मन माँग लिया, इससे राजा जनक विदेह हो गये। मन के जाने से शरीर का अस्तित्व कहाँ रहा? भाव है कि चित्त हर पल बनते–बिगड़ते रहते हैं। इस लेख में विभिन्न प्रकार के चित्तों की दशा, वर्गीकरण के बारे में सूक्ष्मतः वर्णन किया गया है। अतः हमें चित्तों की जानकारी होनी चाहिए तथा इन्हें दूर करने को प्रयत्नशील बने रहना चाहिए। क्योंकि योग साधनाओं के द्वारा जिनका चित्त शुद्ध नहीं होता, उन मनुष्यों के कर्म–संस्कार रूप में अन्तःकरण में इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें से जो कर्म जिस समय फल भोग कराने को तैयार होता है, उस समय उस कर्म का जैसा फल होने वाला है। वैसी ही वासना उत्पन्न हो जाती है तथा अन्य कर्मों के भोग की नहीं होती। अतः जब तक चित्त शुद्ध नहीं होता, उस समय तक योग साधना सफल नहीं हो सकती। अतः चित्तवृत्तियाँ योग साधना में रुकावटें। बाधायें पैदा करती रहती हैं। चित्तवृत्तियों का प्रधान केन्द्र मन ही है। अतः हमें योग साधनारत बने रहना चाहिए। गुरु मार्ग इस साधना में सफलता देने में सहायक होता है, बिना गुरु के सफलतम् योगी नहीं बन सकता। गुरु बिजली के बल्ब की भांति होता है। बिजली का स्विच तथा बल्ब

होल्डर की व्यवस्था भर होने से प्रकाश की किरण नहीं दिखाई देती जब तक बल्ब होल्डर में बल्ब न लगाया जाए। जैसे बल्ब जलने से अँधेरा दूर हो जाता है, उसी तरह गुरु धारण से योग मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

श्री गुरु चरणों में कोटि–कोटि नमन।

■■■

आओ - आओ गुरुजी ....

जगदीश राए बंसल 'अधम', उत्तम नगर, दिल्ली

आओ–आओ गुरु जी अब आओ,
मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।
बे सहारों का तू ही सहारा,
दोनों का तू ही नाथ है।।

योग को जगाने की खातिर
तूने यह रूप बनाया था,
जीवन तत्व करा कर तुमने,
दुनियाँ का रोग भगाया था
अब मेरे लिए क्या देर है?
देर नहीं तो क्या अन्धेर है?
मात–पिता हो जब मेरे,
किस बात का जी गम है।
आओ–आओ गुरु जी.........(1)

अलुपुर जन्म लिया था तुमने,
मथुरा मन को भाया था,
लाहौर तक की शिक्षा लेकर,
संवाई डेरा लगाया था।।
झांसी ऋषिकेश की क्या बात है?
देश विदेश में जी धाक है,
हम दोनों को क्यों विसराया,
कौन हमारे साथ है?
आओ–आओ गुरु जी...........(2)

दीन हीन और दुखिया तारे,
हमने क्या अपराध किया?
जब से दीक्षा ली है गुरु जी,
तब से तेरा नाम लिया
ना और कहीं मुझे ठौर है
ना तुझ से बड़ा कोई और है
दर पर पड़ा हूँ तेरे–
तेरी दया की दरकार है।
आओ–आओ गुरु जी...........(3)

दीन दयालु, जगत कृपालु,
तुम ही मेरे पालक हो।
नैया भंवर में डोल रही है,
तुम ही खेवन वाले हो
सिद्धयोग की बड़ी करामात है
योग साधना में ही विश्वास है
दया की दृष्टी हो जाय–
'अधम' का बेड़ा पार है
आओ–आओ गुरुजी................(4)

■■■

मेरे गुरुदेव, योग की सर्वोच्च सत्ता

(प्रथम)

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

श्री सिद्धयोग दरबार के सुविज्ञ एवं सुधी पाठकों को उपरोक्त शीर्षक समुचित लगना स्वाभाविक है, परंतु नवागन्तुक; इस दरबार से जुड़ने वाले साधक, समुदाय इस शीर्षक से पूर्ण रूपेण सहमत न हों, अत: एक अल्प दृष्टान्त द्वारा उनकी शंका का निवारण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। सन् चौंसठ के दशक में हमारे एक गुरुभाई ने श्री सद्गुरुदेव जी महाराज द्वारा सपत्नीक योग दीक्षा ग्रहण की। आदरणीय हमारे ये गुरुभाई मिरजापुर जनपद (उ.प्र.) के निवासी हैं तथा इन्होंने हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री महेन्द्र नारायण जी के घर पर आराध्यदेव जी से योग दीक्षा ली है। आदरणीय भाई जी के यहाँ ग्राम बरैनी में आराध्यदेव जी द्वारा आठ दिनों का योग प्रचार कार्यक्रम हुआ करता था। पूर्वी उत्तर प्रदेश में योग के प्रचार एवं प्रसार का माध्यम श्री गुरुदेव भगवान ने परम आदरणीय गुरुभाई, बरैनी निवासी श्री महेन्द्र नारायण सिंह जी को निमित्त बनाया। इस यौगिक कार्यक्रम में सपत्नीक दीक्षा लेने वाले आदरणीय भाई का उसी दिन से ध्यान लगना आरम्भ हो गया। इस समय उनकी ध्यान स्थिति उच्च श्रेणी की है। दीक्षा वाले दिन ही, वे जब सायंकालीन आरती में खड़े हुए, जिसमें आराध्यदेव; अनादि सिद्ध महाप्रभु जी की आरती कर रहे थे, ध्यान लग गया। ध्यानावस्था की प्रगाढ़ता में इन्होंने स्पष्ट देखा कि गुरु जी महाप्रभु जी की आरती कर रहे हैं; एक–दो मिनट बाद देखा कि महाप्रभु जी की जगह श्री गुरुदेव जी विराजमान हैं और महाप्रभु जी श्री गुरुदेव भगवान की आरती कर रहे हैं। इस दृश्य को हमारे उस गुरुभाई ने लगभग दसियों बार देखा। वह असमंजश में पड़ गया कि श्री महाप्रभु जी बड़े हैं या श्री गुरुदेव बड़े हैं। आरती बाद श्री गुरुदेव ने प्रवचन दिया एवं भोजन करके विश्राम कक्ष में चले गये। वह श्री गुरुदेव भगवान के पीछे लगा रहा एवं जब सोने गये, तो उनका पैर दबाने लगा। थोड़ी देर बाद श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि जाओ लल्ला! सो जाओ। परंतु वह हाथ जोड़कर खड़ा था। श्री मुख ने कहा, ''लल्ला! क्या बात है।'' उसने कहा कि गुरुदेव मैंने आप द्वारा श्री महाप्रभु जी की आरती करते समय ऐसा–ऐसा देखा है। श्री गुरुदेव भगवान ने मुस्कराते हुए कहा कि लल्ला! मेरे प्यारे लल्ला! तुमने बिल्कुल सत्य देखा है। गुरुतत्व तो एक ही है। इसके बाद हमारे उस आदरणीय गुरुभाई ने प्रणाम निवेदित किया एवं श्री गुरुदेव भगवान ने उसे आशीर्वाद देने के बाद विश्राम करने के लिए भेज दिया। इस प्रकार आराध्यदेव ने परोक्ष रूप से स्वीकार किया कि दोनों सत्ता एक ही हैं, इसमें अन्तर समझना हमारी आप की बुद्धि का भ्रम मात्र है। अब हम आपको श्री गुरुदेव भगवान के मुख्य विषय 'कृपा लीला चरित्र' की तरफ आकृष्ट करना

चाहते हैं, जो निम्न है।

सम्भवत: उन्नीस सौ चौंसठ का ही दशक था। श्री गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व बीते दो दिन हो गया था। आज तीसरा दिन था। गर्मियों के दिन थे, अपराह्न लगभग तीन बजे का समय था। आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज, भोजनोपरान्त श्री भवन में विश्राम ही कर रहे थे। आदरणीय ब्रह्मचारीगण एवं उस समय आश्रम पर उपस्थित हमारे गुरुभाई–बहन अपने–अपने कमरों में ही सोये हुए थे या आराम कर रहे थे। एक गौर वर्ण का बालक, जिसकी अवस्था देखने से अट्ठाइस–तीस वर्ष के आस–पास थी एवं लम्बाई छ: फीट के करीब थी तथा इकहरा बदन था, गुफा के सामने पद्मासन लगाकर बैठा था। उसके आगे का हिस्सा (छाती वाला भाग) महिला निवास की तरफ था एवं पीठ वाला भाग, आश्रम के प्रवेश द्वार के पास वाले कुंए की तरफ था, अपने दोनों हाथ हिला–हिलाकर कह रहा था, 'तेरे जलवे क्या कहने, तेरी शक्ति अपरम्पार बेमिसाल है। तू शाहनशाहों का शाहनशाह है। तू राजाओं का राजा है। तू चक्रवर्ती सम्राट है। क्या कहूँ, तेरी उपमा किससे दूँ। तेरी उपमा तो सिर्फ तुम्हीं से दी जा सकती है, इत्यादि....।''

हमारे एक गुरुभाई जो प्रवेश द्वार की सड़क कि तरफ लघुशंका करने गये थे, वापस अपने कमरे में जाने लगे तो अकेले गुफा के पास पद्मासन पर बैठकर एक नौजवा को बड़–बड़ाते देखे। उसके बैठने वाले स्थान पर अभी धूप थी एवं गर्मी का प्रभाव था। वे उसे मना करने की नीयत से उसके पास गये, यह कहने कि अभी धूप एवं गर्मी बहुत तेज है किसी कमरे या छाया में बैठ जाओ एवं सायंकाल गुफा के सामने बैठकर ध्यान करना। परंतु वहाँ तो मांजरा ही दूसरा था। वह निर्बाध गति से किसी सर्वोच्च सत्ता का गुणगान किये जा रहा था। भाई जी ने उसे जयगुरुदेव कहा, तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया परंतु बोलना बन्द कर दिया। भाई जी ने उससे दुबारा सादर जयगुरुदेव कहा तो उसने उत्तर में कहा, 'जय गुरुदेव जी की।' भाई जी ने उससे कहा कि इतनी तेज धूप एवं गर्मी में किसकी प्रशंसा के गुण गाये जा रहे हो। सुनने वाला तो यहाँ कोई दिखलायी नहीं देता। उस साधक ने कहा कि जिसे सुना रहा हूँ, वह खूब अच्छी प्रकार सुन रहा है एवं हमको आशीर्वाद भी दे रहा है। हमारे प्रश्नकर्त्ता भाई जी की समझ में बात नहीं आयी। उन्होंने कहा कि भाई जी मैं आप की बात समझ नहीं पा रहा हूँ। उस साधक ने कहा कि यह रहस्य ऐसे आप की समझ में नहीं आयेगा। इन्होंने कहा कि कैसे समझ में आयेगा। उस साधक ने कहा, 'जब स्पष्ट खोल कर बताया जाय एवं आप एकाग्र मन से सुनने का प्रयत्न करें।' भाई जी ने निवेदन किया कि यह रहस्य हमें स्पष्ट खोलकर बताने की कृपा करें। आसन पर बैठे साधक ने प्रश्न किया, ''कब दीक्षा ली है।'' दूसरे गुरुभाई ने बतलाया कि इस गुरु पूर्णिमा पर, हमें दीक्षा मिले चार वर्ष हो गये। उत्तर देने के बाद इस भाई जी ने विनीत शब्दों में रहस्य समझाने का निवेदन किया तो पद्मासन से उठकर उस भाई ने कहा कि कदम्ब के पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठा जाय, वहाँ एकान्त है और

वहीं हम इस कृपा लीला चरित्र का सविस्तार वर्णन सुनायेंगे। तदन्तर हमारे ये दोनों गुरुभाई, गुरुकृपा वर्णन सुनाने एवं सुनने उस कदम्ब पेड़ के चबूतरे पर (कमरा नम्बर एक–दो के पीछे) जाकर आराम की मुद्रा में बैठ गये। पद्मासन की मुद्रा में बैठने वाले गुरुभाई की बातों को उन्हीं के शब्दों में सुनने हेतु आप भी वहीं पहुँच जाइये। आदरणीय गुरुभाई जी ने कहा :–

मेरा नाम नवीन कुलश्रेष्ठ है तथा मैं मध्य प्रदेश के रायपुर जिले की सदर तहसील के 'लाला का पुरवा' नामक गाँव का निवासी हूँ। मेरे आदरणीय पिता जी का नाम जानकी प्रसाद कुलश्रेष्ठ एवं आदरणीया माता जी का नाम रमावती था। हम अपनी माता–पिता की दो सन्तानें हैं। एक हमारी बहन बड़ी है तथा उसका नाम आशारानी है। पिता जी ने उसकी शादी बहुत पहले, अपने ही जिले में सरकारी सेवा में कार्यरत अधिकारी से की थी। इस समय उसका भरापूरा परिवार है और सब लोग आनन्द एवं सुख से जीवन–यापन कर रहे हैं। मेरे पिता जी राजस्व विभाग में पटवारी के पद पर कार्यरत थे। प्रमोशन पाकर कानून गो हो गये थे। वे कानूनगो के पद पर सात वर्ष कार्य किये एवं उसी पद से रिटायर हुए। रिटायर्ड होने के चार महीने बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। समय, मैं नौवीं कक्षा में पढ़ रहा था। हम लोगों के पास खेती की एक इंच भी जमीन नहीं थी एवं न अभी भी है। मैंने पढ़ते हुए बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया। देहाती क्षेत्र का होने के नाते एक तो किसी विभाग में नौकरी की जगह निकलती थी तो एक–दो दिन मात्र शेष रहा करता था एवं मैं फार्म नहीं भेज पाता था। यदि किसी विभाग में, मैंने नौकरी का फार्म भर भी दिया तो साक्षात्कार में छांट दिया जाता था। फार्म भरने के लिए तथा साक्षात्कार में जाने हेतु रुपया जुटाना भी मेरे लिए कठिन कार्य था। पिता श्री के मरणोपरान्त कुछ सालों तक तो, उनके द्वारा जमा किये गये रुपयों से अच्छा जीवन यापन हुआ एवं उसके बाद अपने स्तर के सामाजिक स्तर पर जीवन यापन करना कठिन होता गया। माता जी के सब जेवर बिक गये। तब तक मेरी शादी हो गई थी एवं पिता जी की पेन्शन राशि माता जी को इतनी कम मिलती थी कि बड़ी मुश्किल से दोनों वक्त के भोजन का प्रबन्ध हो पाता था। कपड़े एवं घर–गृहस्थी के अन्य खर्चों के लिए दूसरे से ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता था। समय के साथ आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती गयी। परिवार के सभी सदस्य, हमारी माता जी, हम और हमारी पत्नि रात का भोजन प्रायः साथ ही करते थे। एक दिन रात को भोजन के समय हमारी माता जी ने कहा, 'हमने एवं तुम्हारे पिता जी ने लगभग बाइस वर्ष पूर्व एक महात्मा जी से गुरुमंत्र लिया था। उस समय उन्होंने दो घंटे प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक उस गुरु मन्त्र का जप करने की आज्ञा दी थी। तुम्हारे पिता स्नान वगैरह करके आधा घंटा जप किया करते थे। मैं तो मात्र एक माला (एक सौ आठ बार) जप किया करती हूँ। तुम्हारे पिता जी मरते समय हमसे कह गये थे कि जब किसी परेशानी में पड़ना तो गुरु जी के पास चले जाना। गुरु जी का पता भी उन्होंने हमको लिख कर दिया है, मेरे पास रखा होगा। इस समय तो हम लोग काफी परेशानी में हैं। यदि तुम्हारा मन बने तो एक बार उनके यहाँ चला

जाय।

अपनी माता जी की बात एकाग्र मन से सुनने के बाद, हमने माता जी से कहा कि माता जी! गुरु जी के पता वाला कागज ढूँढ़ लो, उसके बाद भाड़े–किराये का प्रबन्ध करके चला जायेगा। आदरणीया माता जी ने रात में ही कागज ढूढ़ लिया एवं हमें दिया। उस कागज पर लिखा था, " श्री गुरुदेव का नाम– ब्रह्मचारी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज। निवास स्थान – गुरु का बाग सवाई जिला, आगरा। पहुँचने का मार्ग – आगरा–टूण्डला मार्ग पर टूण्डला से दो कोस की दूरी पर एत्मादपुर तहसील है। एत्मादपुर से बरहन वाली रोड पर करीब आधा कोस की दूरी पर एक बगीचा है, जो बाँयी तरफ पड़ेगा, उस बाग में एक कुआँ है एवं एक गुफा बनी है। इसे वहाँ के लोग गुरु के बाग के नाम से जानते हैं, वहीं गुरु जी रहते हैं।

▣ ▣ ▣

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, वलिया

अगर चाहते शान्ति हो तो, गुरु चरणों को भज,
आनंद ही आनंद पाओगे, खा सिद्ध गुफा की रज।

यहाँ की पावन धरती में, प्रभु का है वरदान,
चार पदारथ करतल में, देते श्री भगवान,
कमलासन में बैठकर, थोड़ा करके ध्यान,
मन मंदिर में दे दो प्यारे, सद्गुरु को स्थान,
रिश्ता उनसे जोड़कर, मन से जग को तज,
आनंद ही आनंद........... (1)

अहंकार का चोला पहने, डोल रहा मगरूर,
नकली शहशांह बनकर, करता है गरूर,
खुद जीवन से लड़ने वाले, मौत है तेरी दूर,
बदनसीबी साथ है तेरे, तू इससे मजबूर,
छोड़ के इन आडम्बर को, निर्मलता से सज,
आनंद ही आनंद............. (2)

फूल ही फूल खिले हुए हैं, अब मेरे पैमाने में,
नजर मिलते ही बहारें, आ गई मयखाने में,
जुबां पुकारे उनका नाम, जाने में अनजाने में,
वो नहीं तो कुछ नहीं था, मेरे इस अफसाने में,
दिल से पुकारा, उन्हें बचाये, जैसे ग्राह से गज।
आनंद ही आनंद................ (3)

मेरी जिन्दगी के मालिक, मेरे प्रभुजी का संदेश,
यौगिक क्रिया से ही बनते, ब्रह्मा, विष्णु, महेश,
जीवन तत्व से काया कल्प, उनका है उपदेश,
योग की वर्षा जब–जब होती, भीग जाता राजेश,
निर्णय हर कर्मों का करते, वो हैं ऐसा जज।
आनंद ही आनंद.......... (4)
अगर चाहते शान्ति..........

▣ ▣ ▣

योग सर्वांगीण जीवन पद्धति के रूप में

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली
विशेषज्ञ केन्द्रीय योगानुसंधान परिषद् भारत सरकार नई दिल्ली

योग समग्र समुन्नत ऐसी जीवन पद्धति है जिसका अनुकरण, अनुपालन और अनुष्ठान करने पर क्लेश, कर्म, आधि–व्याधि तथा अज्ञान से व्यावृत्त अल्पज्ञ जीव सर्वतंत्र स्वतंत्र दैवी सम्पत्तियुत आनन्दमुक्चेतन ब्रह्म स्वरूप होकर जन्म मरण जराव्याधि से सर्वथा मुक्त होकर अमृतभोग भोगी स्वयं सिद्ध बन जाया करता है। इससे बढ़कर उत्तमोत्तम विद्या तथा जीवन पद्धति विश्व में कोई दूसरी नहीं है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में योग को सृष्टि का आदि और अन्त (योगः प्रभवाप्ययौ) कहा है। योग जीवात्मा और परमात्मा में समता, साम्यावस्था तथा अभेद उपलब्ध करने का परा विज्ञान है। इसके अभ्यास का स्वतंत्र विज्ञान है जो किसी भौतिक विज्ञान के नियमों और प्रक्रियाओं से बहुत आगे है। यह परमपुरुष जिसे योगदर्शन की भाषा में 'परमगुरु' या सद्गुरु कहा गया है उसके पादारविन्द में उसी की निर्दिष्ट प्रयुक्तियों को आत्मसात् करने से उपात्त हो सकता है। इसमें स्वेच्छा चारिता तथा निरंकुशता को कहीं स्थान नहीं है। आध्यात्मिक प्रयोगशाला में एक वैज्ञानिक की भाँति सद्गुरु की आदिष्ट पद्धति में पूर्णरूपेण समर्पित होकर निरन्तर प्रयोग करते रहने का जिसमें विश्वास और धैर्य हो वह योगी बन पाता है। अन्यथा वह सामान्य मनुष्य धर्म से भी आडम्बर और अहंकार के कारण च्युत हो जाता है।

जगज्जननी परामम्बा भूतभावन परशिव से जहाँ सकल कलाओं का लास होता रहता है उस सुरम्य कैलास के शिखर पर इस पराविज्ञान की जिज्ञासा करती हैं। श्री गुरुगीता का प्रारम्भ इसी जिज्ञासा से होता है – 'केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत् । त्वं कृपां कुरु मे स्वामिन्, नमामि चरणौ तव ।।' अर्थात् हे स्वामी! मैं प्रणत होकर लोकोपकार के लिए वह मार्ग जानना चाहती हूँ जिससे मेरी सन्तानें तीनों लोकों में भी जो ज्ञान दुर्लभ है और जिससे नश्वर देह वाला जीव अमृत पुत्र–पुत्री बन सके, उस परा विद्या के विषय में स्पष्ट जानना चाहती हूँ। आप कृपा करके उस विद्या के गूढ़ रहस्यों को लोकोपकार के लिए उद्घाटित करने की कृपा करें। यदि आप कृपा नहीं करेंगे तो संसार के जीवन नाना प्रकार की पूजा पद्धतियों में कोल्हू के बैल की तरह जन्मजन्मान्तरों तक घूमते ही रहेंगे।' भगवती के अनुनय–विनय को सुनकर भूतभावन, महेश्वर शिवसूत्र में रहस्यात्मक शब्दावलि में उत्तर देते हैं, 'गुरुरुपायः।' अर्थात् कोल्हू के बैल से बचने का यदि कोई पक्का उपाय है तो वह है 'गुरुगतज्ञान का आश्रय' सद्गुरु की शरणागति सद्गुरु के हृदय की धड़कन बनकर जीवन पद्धति का आश्रय।' इसी को 'गुरुमत' 'विहंग मार्ग' 'सिद्धमार्ग' 'सिद्धयोग' आदि नामों से सन्तों ने अभिहित किया है। चित्त, बुद्धि, मन तथा जीवन की मलिनता की शुद्धि न होने के कारण स्थूल दृष्टि मलिनाशय वाले जीवों ने 'गुरुमत' को भी अपने अन्तःकरण के आधार पर ही आधा–अधूरा ही समझा और 'नाम–रूप' के दायरे से

निकल कर 'अखण्डमण्डलाकार चराचर जगत में व्याप्त उस सद्गुरु सत्ता की ओर चलकर जीवन का रूपान्तरण करने की अपेक्षा,संकीर्णताओं और आग्रहों में आबद्ध होकर शिष्य बनने के पहले वे स्वयं भू गुरु बन बैठे। चले थे भवरोग मिटाने किंतु राग–द्वेषयुक्त विषय सुख भोग की बलवती इच्छा के वशीभूत होकर संकीर्णताओं, लोकेषणा, वित्तेषणा और पुत्रेष्णा की कैद में बन्दी बनकर महारोगों के शिकार हो गये। निकले थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास। न गुरु से परिचय हो सका न उनकी शिक्षाओं को समझ कर उन पर चलने का साहस जुटा सके। गुरु और चेला दोनों ही 'अन्धा अन्धे ठेलिया, दोनों कूप परन्तु इस कबीर की उक्ति को चरितार्थ करने वाले बन गये। जिसका परिणाम विश्व भर में दिखाई पड़ रहा है– अशान्ति, आतंक, असन्तोष, पाखण्ड, आडम्बर, वाद–विवाद, सम्पत्ति अन्धी दौड़। साधना के नाम पर वही ढाक के तीन पात। 'साधक बने बिना योग सम्पत्ति नहीं मिलती। योग सम्पत्ति का अर्थ है– आत्मशान्ति, अतीन्द्रिय शक्तियां, कल्पित और अकल्पित दोनों प्रकार की सिद्धिरूपी शक्तियाँ, मन की एकाग्रता, चित्त की निर्मलता, वृत्तियों का निरोध, विवेक ख्याति के सप्त सोपानों का विकास, ऋतम्भरा प्रज्ञा, विशोका ज्योतिष्मती स्थिति, समत्वबुद्धि, तत्वग्राही बुद्धि, निष्काम तथा कलासक्ति रहित होकर कर्म करने की कुशलता, सर्वज्ञता, सर्वभाव, अधिष्ठा तत्त, सर्वदोषबीजक्षय, नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त चिदानन्द रूप शिवत्व में अवस्था होकर धर्ममेघ समाधि की उपलब्धि तथा जीवन्मुक्तावस्था के शाश्वतसुख की उपलब्धि। इसके लिए दीर्घकाल, निरन्तरता के साथ, दृढ़निष्ठा और विश्वास के साथ सतत् योगाभ्यास परायणता की आवश्यकता है। बीज कितना ही अच्छा हो, किसान कितना ही कुशल हो, यदि खेत अच्छी तरह नहीं जोता गया तो उस खेत में खरपतवार और झाड़–झंकाड़ उगेंगे जो बीज की उर्वरा शक्ति को भी अवरुद्ध कर देंगे। सद्गुरु कितने ही समर्थ हों, मंत्र कितना ही आत्मशक्ति युक्त हो और काल का संयोग अर्थात् सत्संग कितना ही अच्छा क्यों न प्राप्त हो यदि साधक उद्यमी नहीं है, ऊँची कमाई का धनी नहीं है तो योग के नाम पर बाह्य आडम्बर के झाड़–झंकाड़ ही देखने को मिलेंगे। सद्गुरु की भूमिका तो बाद में आती है। सर्वप्रथम साधक स्वयं अपना गुरु बनकर अपनी अशुद्धियों और दोषों का परिमार्जन करे। यही खेत की अच्छी जुताई है। सद्गुरु दीक्षा विज्ञान के द्वारा शुद्ध किये हुए अन्तःकरण में अपनी कृपाशक्ति द्वारा शिष्य के अन्दर स्वरूप शक्ति का आधान करता है जिससे साधक शिष्य बनकर अभ्यास और वैराग्य की साधना द्वारा अविद्यादि पंचक्लेशों, त्रिदोषों, त्रिगुणों, पंचकोषों, षट्चक्रों और आणवमलों, कर्ममलों, वासनाजन्यमलों, संस्कारमलों से अपने को निर्मल करता हुआ अमलात्मा परमहंस और योगेश्वर बन जाता है।

योगीश्वरों ने योग के सभी सोपानों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) तथा सभी प्रविभागों (कर्मयोग, हठयोग, ज्ञान योग, नाद योग, भक्तियोग, राजयोग आदि) सभी को महायोग अर्थात् सिद्धयोग का आवश्यक अंग माना है। किसी एक को छोड़ कर पूर्णता प्राप्त करना असम्भव है। सिद्धयोग दिखावे का योग नहीं है, एक वास्तविकता है। यह एक ऐसा डिपार्टमेण्टल स्टोर है जहाँ सुई से लेकर हवाई जहाज तक सभी एक ही स्थान पर

उपलब्ध हो सकता है। सिद्धयोगी ज्ञान–विज्ञानी के समस्त रहस्यों में पारंगत होता है। वहाँ आधि, व्याधि और उपाधियाँ रहतीं ही नहीं। उसका अपना आपा ही मिट गया फिर श्री श्री 108 जैसी उपाधियाँ कहां टिकेंगी। योगीन्द्र गोरक्षनाथ कहते हैं कि कपूर अग्नि का सानिध्य पाकर ज्योति बन गया अब उसमें काठिन्य कहां मिलेगा? योगी में अहंकार लेशमात्र नहीं रहता। वह विनम्र, करुणापरायण, प्रेममूर्ति और मंगता नहीं, दाता हो जाता है। वह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे नहीं भागता, प्रत्युत सत्तायें और सम्पत्तियाँ उसकी ओर भागा करती है जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर दौड़ती हैं। 'तिमि सुख सम्पत्ति बिनहिं बुलाये। धर्मशील पर जांहि सुहाये। अलंकारों से उसकी शोभा नहीं होती ज्ञान ही उसका आभूषण होता है। उसके सानिध्य को पाकर सभी अपने को धन्य और गौरवान्वित समझने लगते हैं। उसकी सभी वस्तुओं इन्द्रियों और ज्ञान की रश्मिओं में चिन्मय सत्ता का स्पन्दन रहता है।

योग साधना का प्रारम्भ कर्म, मन, वाणी तथा बाह्य एवं आभ्यन्तर आहार–व्यवहार की पूर्णशुद्धि से होता है और उसकी परिणति विवेकज ज्ञान के द्वारा प्रकृति–पुरुष की समान शुद्धि में होती है। शुद्धि के होने पर ही कैवल्यलाभ होता है। महर्षि पतंजलि प्रणीत 'योगसूत्र' में आदि से अन्त तक शरीर शुद्धि, आचार–व्यवहार शुद्धि, कायेन्द्रियशुद्धि और बुद्धि शुद्धि, आत्मशुद्धि तथा 'संस्कार शुद्धि आदि के विविध उपायों का दिग्दर्शन किया गया है। 'शौच' के प्रसंग में इस बात का संकेत किया है कि नियमों में आबद्ध हो जाने मात्र से शौच–सन्तोष, तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान नियमों का निष्ठा से अभ्यास करने से ही साधक में अद्भुत शक्तिसामर्थ्य आती है। देखिए योग सूत्र साधनपाद सूत्र–

सत्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शन योगत्वानि च।।

अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि से मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रिय जय और आत्मदर्शन की योग्यता – ये सब होते है। योगाङ्गों के अभ्यास के परिणाम भी अशुद्धिक्षय और विवेक की जाग्रति बताये गये है। विवेक ज्ञान को तारक ज्ञान कहा गया है– **'तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषय क्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।।'** योगसूत्र के तृतीय पाद के 160 वें सूत्र में विवेकज्ञान की विवेचना करते हुए कहा गया है कि जो विवेकज्ञान (तत्वज्ञान) समस्त वस्तुओं तथा वस्तुओं की सभी अवस्थाओं को चटपट एक साथ ग्रहण कर सकता है उसे ही तारक ज्ञान कहा गया है। विवेक ज्ञान का मार्ग वेध दीक्षा की सामर्थ्य वाले सद्गुरु की ब्राह्मी स्थिति से शुद्धान्तःकरण युक्त गुरुनिष्ठ किसी–किसी सद्शिष्य को प्राप्त हो पाता है। यह केवल सिद्धयोग की ही अधिकार सीमा में है।

सद्गुरु की कृपा दीक्षा विधान से (दृक्, स्पर्श, शब्द, संकल्प या दैवी विधान से) सम्पन्न होती है। जिसमें सद्गुरु अपने चित्त के अनुरूप शुद्ध अन्तःकरण युक्त सच्छिष्य में ब्रह्मसत्ता का बीज वपन करता है। इसमें एक साथ दो प्रक्रियायें सम्पन्न होती हैं। 'दीक्षये' और क्षीयते' की। दीयते अर्थात स्वरूपशक्ति का शिष्य की अन्तर्मुखी चेतना (कुण्डलिनी शक्ति, में स्फुरण और स्पन्दन तथा बाह्यचेतना का संकोचन। इसी को कुण्डलिनी जागरण नाम से जाना जाता है किंतु

यह कार्य एक व्यापार बनता जा रहा है। वास्तविक रहस्यों को जानने वाला कोई–कोई विरला ही मिलेगा। हाँ गुरुघण्टाल अवश्य बड़े–बड़े नाम लेकर लोगों की श्रद्धा से खिलवाड़ करते यत्र–तत्र सर्वत्र मिल जायेंगे। अज्ञान क्षीण होता जाय और विवेक ज्ञान की भूमिकाओं में साधक आरूढ़ होता चला जाय। उसके अन्दर चाचरी, भूचरी, अगोचरी, खेचरी, शाम्भवी और निरालम्बिनी मुद्राओं का नर्तन होने लगे, आत्मप्रकाश को ढकने वाले अज्ञान के आवरण गुरुज्ञान के प्रकाश से हटते चले जायें जिससे वह मन के संकल्प–विकल्पात्मक द्वन्द्वों से निकलता हुआ कूटस्थ स्थिति में अमनस्कता में स्थिर हो जाय तभी सद्‌गुरु की गुरुता और शिष्य की शिष्यता है। यदि ऐसा नहीं होता तो योग के नाम पर धोखा है। भगवान सदाशिव संकेत करते हैं कि अल्पज्ञ, पापमलायतन इस जीव में इतनी सामर्थ्य कहाँ है कि वह लौकिक कार्यों की तरह अपने साधनों के बल पर उस अलख, अगम, अगोचर, सर्वव्यापक सत्ता को स्वायत्त कर सके।

समर्थ सद्‌गुरु की कृपा प्रसादी जीव को चाहिए तभी वह जन्म–मरण के भवचक्र से बाहर निकल सकता है। जो अपने इष्ट में एकाकार है, समाहित चित्त है वही प्रसाद दे सकता है। जो खुद, इच्छाओं, वासनाओं, कामनाओं और विषयों का गुलाम है उसमें ब्राह्मी चेतना कहाँ होगी? भगवान सदाशिव कहते हैं– 'गुरुवक्त्र स्थितं ब्रह्म प्राप्यते–तत्प्रसादतः।' इस वाक्य में गूढ़ रहस्य भरा हुआ है दीक्षा विज्ञान का। ब्रह्म का सामान्य अर्थ है– सबके अन्दर व्याप्त सम्पूर्ण चेतनाशक्ति वह पहले गुरु रूप में कार्य करने वाले महापुरुष स्वयं सिद्धावस्था में स्थित हों, अर्थात् वह साधना द्वारा उस स्थिति को प्राप्त कर उसी में नित्य अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में एकरसता के साथ रमण करते हों, वही कुछ करने की योग्यता रखते हैं। उस सद्‌गुरु की वह चराचर व्याप्त भूमा की चेतना उस की प्रसन्नता के बिना हस्तान्तरित नहीं होती। अर्थात् गुरु–शिष्य के भावसाम्य हुए बिना शक्तिपात सम्भव नहीं है। प्रसन्नता का अर्थ यहाँ मुस्कराहट आदि लक्षणगम्य नहीं है। अपितु 'निर्दोषता' 'पूर्ण शुद्धता' से है। इतने से भी काम बनने वाला नहीं है ब्रह्म सत्ता, गुदेव के 'वक्त्र' में स्थित बतायी गई है। 'वक्त्र का सामान्य अर्थ मुख है किंतु यहाँ वक्त्र का अर्थ गूढ़ है। वह स्थान जहाँ सद्‌गुरु उस ब्राह्मी स्थिति में आठों याम रहते हैं वहीं स्थित होकर जब वह कृपा का दान देने में समर्थ हों तभी शिष्य का कल्याण होगा। योग साधना कीमियागिरी **(Alchomy)** स्वर्ण बनाने की प्रक्रिया है जिसमें शिवरूप पारा, शिवारूप गन्धक, साधना रूपी अग्नि, रुद्रवन्ती, ग्वारपाठा, निम्बू, पलाश, खदिर, ताबा, लोहा, चांदी धातुएं, मर्दन, सम्पुट विधान मंत्र औषधि आदि सभी अंग उचित सन्निवेशित हों। तभी तांबा, चांदी, लोहा या पारा स्वर्ण में परिवर्तित हो पाता है। कहीं कुछ भी कमी रह गयी तो लाख प्रयत्न करने पर स्वर्ण नहीं बन पाता। इसी तरह,योगाभ्यास में सफलता के लिए पूर्वोक्त सभी साधन सामग्री आवश्यक है।

गणितीय सूत्र का संक्षिप्त प्रयोगात्मक स्वरूप

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

(गतांक से आगे)

यही श्रुतिनिर्देश भी है कि

अनादिसम्बंधवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वमात्मनि स्थितम्।।
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे ब्रहन्तो अस्मिन् हंसः भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः ततः तेन अमृतत्वमेति।।

अर्थात् क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही अपनी अविद्यारूपी माया के कारण स्वयं ही अनादिकाल से जीवात्मा के रूप में मायाजाल में बंध गया है किंतु जब भी योगयुक्त होकर अपने तथा मनबुद्धि आदि प्राकृतिक गुणों के भेद को जान लेता है तब अपने में छिपे ब्रह्मतत्व को जानकर पुन: परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। वस्तुत: इस सर्वव्याप्त, महानतम समस्त जीवसृष्टि के आश्रयस्थल ब्रह्मचक्र में भ्रमित जीवात्मा अपने को परमात्मा से भिन्न एक असमर्थ, सुखदुःखादि द्वन्दों से भ्रमित तथा अविद्यादि पंचक्लेशों की दलदल में फंसा हुआ जीवात्मा समझता है और यही जीवस्वभाव उसके दुःखों का एकमात्र कारण है। किंतु युक्तयोगी होकर वही जीवात्मा जब यह अनुभव करती है कि यह प्रकृति के गुण हैं और वह स्वयं उनसे भिन्न प्रकृति का शासक तथा नियन्ता परमात्मा ही है तब वह गुणातीत होकर परब्रह्म में लीन हो जाती है। यहाँ यह समझना भी आवश्यक है कि युक्तयोगी कौन और कैसा होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने युक्तयोगी की परिभाषा इस प्रकार दी है कि –

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येव अवतिष्ठति।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्तः उच्यते तदा।।
प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्तः आसीत् मत्परः।।
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तः उच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः।।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

अर्थात् जब चित्त यानि मन तथा बुद्धि संसार के भोगों के आकर्षणों को त्यागकर

उनका चिन्तन करना बन्द कर देते हैं तथा अपने आश्रय आत्मा में एकाग्र होकर उसमें समाहित होने लगते हैं। अन्तःकरण में चित्तवृत्तियों का अभाव होने लगता है तथा सांसारिक कामनायें लुप्त तथा वैराग्य की अग्नि में भस्म होने लगती हैं तब ऐसा योगी युक्तयोगी कहा जाता है। उसका मन शान्त होकर बुद्धि तत्व में लीन हो जाता है, बुद्धि मायिक विकारों के नष्ट होने से शुद्ध होती जाती है तथा साधक का जीवन निर्भय तथा कामवासनाओं से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार मन तथा बुद्धि संसार का चिन्तन छोड़कर परमात्मा के सर्वव्यापक ज्ञानस्वरूप में लीन होने लगते हैं। सीमित जीवभाव लुप्त होने लगता है तथा परमात्मभाव का उदय होने लगता है। जब वह साधक ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण होकर अपनी शुद्ध तथा सूक्ष्म बुद्धि में परमात्मा के दिव्य प्रकाश का दर्शन करता है। परिणामस्वरूप उसे अक्षय आन की अनुभूति होती है जिसको पाकर इन्द्रियभोगों के सुख तुच्छ लगने लगते हैं। इस अवस्था में संसार के सभी आकर्षण प्रभावहीन तथा तुच्छ हो जाते हैं। संसार की कूपमन्डूकता समाप्त हो जाती है और वह परमात्मभाव में स्थित होकर सभी प्राणियों में अपने स्वरूप को तथा सभी प्राणियों तथा चराचर जगत को अपने सर्वव्यापी आत्मस्वरूप में स्थित तथा आश्रित अनुभव करता है। यही युक्तयोगी की पहचान तथा परिभाषा है। भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं कि ऐसा योगी ही अजर तथा अमर हो जाता है, क्योंकि –

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागतः।
सर्गे अपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथयन्ति च।।

अर्थात् इस ज्ञान की स्थिति को पाकर तथा परमात्मस्वभाव को प्राप्त करने वाले योगी अजर तथा अमर होकर जन्ममरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

किंतु यह स्थिति कैसे प्राप्त होगी, इस पर भगवान श्रीकृष्ण का दिशानिर्देश है कि–

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्धया धृतिग्रहीतया।
आत्मस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
यतो यतो निश्चरति मनो दुर्निग्रहं चलम्।
ततो ततो नियम्य एतत आत्मन्येव वशं नयेत्।।
प्रशान्तमनसं हि एनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतं अकल्मषम्।।
युजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते।।

गीता जी के विविध पालनीय बिन्दु

1. जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों का बार–बार देखना।
2. प्रकृति के गुणों द्वारा विचलित नहीं होना; क्योंकि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं।
3. ब्रह्मचर्य का पालन करना।
4. देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषों का यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त महापुरुषों से सुनकर उपासना करना।
5. मन को सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलता में सम रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा समझें कि आने–जाने वाली और अनित्य है, इसलिए सहन करें तथा इस मन्त्र का जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'
6. यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य देवताओं का निष्कामभावपूर्वक पूजन–अर्चन करना।
7. सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणोंद्वारा किये जाते हैं। अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है। अतः किसी भी कार्य में अपने को कारण नहीं मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।
8. शास्त्रविधि के अनुसार चलें। कल्याणकारी शास्त्रों को आदर्श मानें।
9. सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् को अर्पण करनी चाहिए। जो कुछ करें, जो कुछ खायें, जो कुछ हवन करें, जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें– सब कुछ प्रभु को अर्पण करें।
10. ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकता से कम नींद भी न लें। आवश्यकता से अधिक भोजन न करें तथा जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत शास्त्रोक्त होने से करने चाहिए।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11
MAY 2010

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

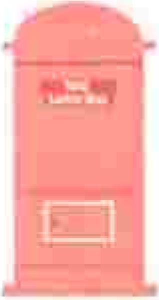

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मोहर आभास (स्थान छपाई) का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर स्थान का आयोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 3.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के फर्श पर स्वागत पौलिएस्टर की दरी लगाकर विज्ञापन दर रु० 100/- प्रति वर्ग फीट का मूल्य रु० 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर कम्पनी का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566.
सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) रासलाल शर्मा